शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 8 अंक : 5 1 दिसम्बर 2015

(मार्गशीर्ष-पौष, विक्रम संवत् 2072)

संरक्षक
मुकुन्द कुलकर्णी
प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक
विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
डॉ. नाथू लाल सुमन
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल
नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष: 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष: 011-22914799

E-mail:
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at:
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

समग्र विकास का आधार: नई शिक्षा नीति ❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

विद्यार्थी अधिगम में नवीन वैज्ञानिक तकनीकी का उपयोग होने से ही शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होगी। विनियमन का उद्देश्य शिक्षा की पहुँच, विस्तार, गुणवत्ता व उत्कृष्टता होनी चाहिये। केन्द्रीय शिक्षण संस्थाएँ सामाजिक परिवर्तन के साथ - साथ देश के सम्पूर्ण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। यह समाज को शैक्षिक पोषण प्रदान कर सबल, सक्षम व सशक्त समाज का निर्माण कर सकते हैं। समाज के सभी वर्गों में ज्ञान व शोध का संचार कर, परम्परागत विषयक ज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना, प्राचीन व अर्वाचीन ज्ञान के मध्य सेतु विकसित कर उनका विस्तार कर नया आयाम देना आदि कार्यों का सम्पादन करना चाहिए।

12

अनुक्रम

4. क्या हो भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति - सन्तोष पाण्डेय
6. भारतीयता हो शिक्षा नीति का आधार - डॉ. बजरंग लाल गुप्त
8. पहले बुनियाद मजबूत बने - जगमोहन सिंह राजपूत
10. शिक्षा में स्वराज - गिरीश्वर मिश्र
15. नवीन भारतीय शिक्षा नीति बने नूतन-पुरातन का संगम - डॉ. रेखा भट्ट
17. नई शिक्षा नीति- आवश्यकता, संकल्पना एवं उपादेयता - बजरंग प्रसाद मजेजी
19. शिक्षा को राजनीति से अलग रखें - बजरंगी सिंह
23. नई शिक्षा नीति और महिला शिक्षा - डॉ. जगदीश सिंह दीक्षित
25. Education System & Equal Opportunity - Prof. A. K. Gupta
27. Towards National Education as Envisaged... - Dr. TS Girishkumar
30. तकनीकी शिक्षा का निराशाजनक दौर - शशांक द्विवेदी
32. शिक्षा में कब होगा मेक इन इंडिया - अभिषेक कुमार
34. भय के माहौल में कोमल मन - दिलीप चुघ
36. नोबेल के हकदार थे डॉ. उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी - विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
38. गतिविधि
41. शैक्षिक समाचार

नीति क्रियान्वयन पर ध्यान देना होगा

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

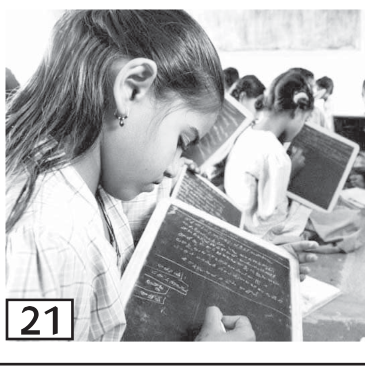

21

यदि कुछ सार्थक करना है तो सोचना होगा कि पूर्व के इतने प्रयासों के बाद भी शिक्षा में परिवर्तन क्यों नहीं आया है? शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन की दृष्टि से आज भी हम एक चौराहे पर खड़े हैं। इतने वर्षों में भी तय नहीं कर पाए की जाना किधर है? अभी स्पष्ट नहीं है कि हम अमेरिका की नकल को विकास कहते है या महात्मा गाँधी के ग्राम स्वावलम्बन को। युवकों को रोजगार देना आज भी हमारी प्रमुख समस्या है। आर्थिक असन्तुलन खतरनाक स्तर तक बढ़ता जा रहा है। सबका साथ, सबका विकास व सबको न्याय देना है तो आयातित ज्ञान हमारा मार्ग दर्शन नहीं कर सकता।

क्या हो भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति

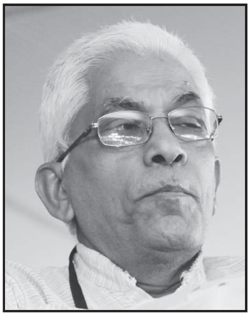

❑ सन्तोष पाण्डेय

संपादकीय

निकट भविष्य में ही भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति सभी के सामने होगी। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने काफी विचार विमर्श के पश्चात् एक 33 सूत्रीय विचार पत्र जारी किया है जिस पर देश भर के शिक्षा संस्थानों, सामाजिक संस्थाओं व जनसाधारण के बीच गंभीर विचार मंथन हो रहा है। अपेक्षा तो यह है कि इन सभी के सुझावों व विचार मंथन से राष्ट्रीय आवश्यकताओं व अपेक्षाओं को पूरा करने वाली राष्ट्रीय शिक्षा नीति उभर सकेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर विचार से पूर्व उस वातावरण व चुनौतियों को ध्यान में रखना आवश्यक है जिसके संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्मित हो रही है। स्वतंत्रता के उपरान्त 70 वर्षों में देश में एक ही विचारधारा का प्राधान्य रहा है। यह विचारधारा मूलत: पश्चिमी सोच व दर्शन पर आधारित रही है। वामपंथी विचार दर्शन व नीति का भी इसमें शनै: शनै: प्रवेश हुआ व पुष्ट होता गया, दलीय राजनीतिक सोच व सामाजिक व्यवस्था को धर्म निरपेक्षता में ढालने का प्रयास भी होता रहा। कालान्तर में धर्म निरपेक्षता ने सर्वधर्म समभाव को पृष्ठभूमि में धकेल कर तुष्टीकरण से प्रेरित तथा-कथित धर्म निरपेक्षता को पुष्ट किया। यह राजनीतिक लाभ का प्रमुख उपकरण बन गई। परिणाम रहा कि जो भी शिक्षा नीतियाँ बनी वे वामपंथी विचारमूल्यों, पश्चिम के अनुकरण तथा एक धर्म व वर्ग विशेष के तुष्टीकरण के ध्येय से ग्रसित रही। इन नीतियों में भारतीय जीवन दर्शन, ज्ञान परंपरा, सांस्कृतिक मूल्यों व वातावरण की पूर्ण उपेक्षा की गई। भारत की शिक्षा नीतियों पर अब तक मैकालयी शिक्षा पद्धति का भारी प्रभाव आज तक बना हुआ है। मैकालयी शिक्षा पद्धति मूलत: भारतीयों को राष्ट्रीय स्वाभिमान, आत्मनिर्भर, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था से विहीन कर पश्चिमी जीवन दर्शन व शैली को प्रेरित कर देश व समाज में स्थायी विभाजन करने वाली थी। मैकालयी शिक्षा पद्धति को राज्य द्वारा प्रेरित करने व संरक्षण देने का परिणाम देश आज भी भुगत रहा है। ब्रिटिश शासन काल में आर्थिक व्यवस्था का भारी पराभव हुआ। परिणाम था आर्थिक स्वावलम्बन व स्वरोजगार का आधार नष्ट होना इससे उत्पन्न भारी आर्थिक विपन्नता ने 'नौकरी' व्यवस्था को जन्म दिया। घोर निर्धनता से ग्रस्त परिवारों का एकमात्र आशा की किरण 'नौकरी' सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा का स्तंभ बनी। इसका दुष्प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। निर्धन वर्ग हो या सम्पन्न वर्ग सभी परिवारों में शिक्षा प्राप्ति का एकमात्र लक्ष्य 'श्रेष्ठतर नौकरी' प्राप्त करना है। देश की श्रेष्ठतम प्रतिभा भी देश व समाज के उत्थान का वाहक न होकर अधिकतम वेतन व सुविधा वाली नौकरी को इष्ट मानने वाली बन गई है। फलत: शिक्षा, ज्ञान के सृजन व व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का माध्यम बनने से चूक रही है। शिक्षा रोजगार सृजन का माध्यम हो न कि 'नौकरी' पाने का। अभी तक शिक्षा नीतियाँ राष्ट्रीय गौरव, स्वाभिमान, भारतीय जीवन दर्शन व भारतीय शाश्वत जीवन मूल्यों को प्रेरित कर 'राष्ट्रभाव' को प्रेरित करने में सक्षम सिद्ध नहीं हो सकी है। नीतियों में इनकी चर्चा अवश्य की जाती रही है, परन्तु क्रियान्वयन में पूर्णत: विफल रही है। अब समय है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परम्परा से आगे आने वाली पीढ़ियों को परिचित कराया जाय।

इन तथ्यों को दृष्टिगत कर यह अपेक्षा की जा सकती है, कि नई शिक्षा नीति में कुछ बिन्दु मूल बिन्दुओं के रूप में शामिल हों। सर्व प्रथम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में राष्ट्रीय भाव को पुष्ट करने वाले विषय आधार रूप में सम्मिलित होने चाहिये। राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्र के प्रति निष्ठा, राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति सम्मान भाव आदि विषयों पर बल दिया जाना चाहिये। द्वितीय, देश की सांस्कृतिक परम्परा, संस्कृति, जीवन दर्शन व जीवन मूल्यों, प्रकृति, पर्यावरण व मानव में पारस्परिक सामंजस्य जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रेरित करने वाली शिक्षा पद्धति व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित की जाय। तृतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति व्यक्ति व परिवार को स्वावलम्बन व स्वाभिमानी बनाने वाली होनी चाहिये। इसके लिये ऐसी शिक्षा पद्धति विकसित की जानी चाहिये जो स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में 'व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं का प्रकटीकरण कर उन्हें पुष्पित व पल्लवित करने वाली हो।' इस हेतु 'रोजगार' व नौकरी में भेद किया जाना आवश्यक है। स्वरोजगार की भावना को पुष्ट कर इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा समाज बने जिसमें रोजगार देने वालों की प्रधानता हो न कि 'रोजगार चाहने' वालों की। चतुर्थ, मानव जीवन में अध्यात्म भाव आवश्यक है जो धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के चतुष्टय पर आधारित हो। धर्म व

निर्धन वर्ग हो या सम्पन्न वर्ग सभी परिवारों में शिक्षा प्राप्ति का एकमात्र लक्ष्य 'श्रेष्ठतर नौकरी' प्राप्त करना है। देश की श्रेष्ठतम प्रतिभा भी देश व समाज के उत्थान का वाहक न होकर अधिकतम वेतन व सुविधा वाली नौकरी को इष्ट मानने वाली बन गई है। फलत: शिक्षा, ज्ञान के सृजन व व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का माध्यम बनने से चूक रही है। शिक्षा रोजगार सृजन का माध्यम हो न कि 'नौकरी' पाने का। अभी तक शिक्षा नीतियाँ राष्ट्रीय गौरव, स्वाभिमान, भारतीय जीवन दर्शन व भारतीय शाश्वत जीवन मूल्यों को प्रेरित कर 'राष्ट्रभाव' को प्रेरित करने में सक्षम सिद्ध नहीं हो सकी है। नीतियों में इनकी चर्चा अवश्य की जाती रही है, परन्तु क्रियान्वयन में पूर्णत: विफल रही है। अब समय है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परम्परा से आगे आने वाली पीढ़ियों को परिचित कराया जाय।

आस्था महत्त्वपूर्ण जीवन मूल्य हैं। आस्था व जीवन मूल्य विवेक आधारित हों, इसके लिये जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temperament) को प्रेरित करना आवश्यक है। नये ज्ञान के सृजन, वर्तमान की मानवीय समस्याओं और अज्ञात को ज्ञात में बदलने के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण को शिक्षा व ज्ञान का मूलाधार बनाना आवश्यक है। एतदर्थ शिक्षा नीति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रेरित करने वाले उपायों को स्थान दिया जाना आवश्यक है। पंचम, राष्ट्रीय भाव सांस्कृतिक व शाश्वत जीवन मूल्यों को व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाविष्ट करने के ध्येय से शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी आवश्यक है। शिक्षा में मातृभाषा की उपेक्षा से ही पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति का प्रसार बढ़ा है। भारतीय ज्ञान परंपरा अवरुद्ध हुई है। मातृभाषा की उपेक्षा व अंग्रेजी भाषा की प्रमुखता से छात्र जीवन में प्रारम्भ से ही व्यक्ति में हीन भाव बन जाता है जो जीवन पर्यन्त उचित निर्णय लेने, स्वाभिमानी बनने में बाधक बनता है। व्यक्ति में अन्तर्निहित क्षमताओं को प्रस्फुटित करने में मातृभाषा का अतुलनीय योग होता है। यह नहीं भूलना चाहिये कि मातृभाषा ही राष्ट्रभाव व संस्कृति का वाहक होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इन पाँचों को आधारभूत सिद्धान्तों या मूलाधार के रूप में सम्मिलित किया जाना अपेक्षित है।

इन मूलाधारों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति को व्यावहारिक स्वरूप देना होगा तथा प्रभावी क्रियान्वयन हेतु कार्य योजना बनानी होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के व्यावहारिक स्वरूप में प्राथमिक से उच्च शिक्षा, सभी प्रकार की विशिष्ट शिक्षा, शोध व अनुसंधान को व्यावहारिक जीवन से जोड़ने की एक एकीकृत योजना को प्रेरित किया जाना चाहिये, जो एक शिक्षित व ज्ञान आधारित समाज के निर्माण हेतु अति आवश्यक है। सभी को शिक्षा का अवसर प्रदान करने के लिये देश शिक्षा के अधिकार को व्यावहारिक रूप दे चुका है। इससे देश भर में नामांकन बढ़ा है, परन्तु सीखने का स्तर (Learning Level) बहुत ही नीचा है, स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। कमजोर भौतिक सुविधायें स्कूल छोड़ने का एक बड़ा कारण है। प्रारम्भ से ही भारी भरकम बस्ता बड़ी समस्या है। प्राथमिक, उच्च प्राथमिक शिक्षा में ऐसे उपाय किये जाने चाहिये जिनसे इन समस्याओं का निराकरण हो सके। प्राथमिक शिक्षा मृतभाषा में ही दी जाय। यथा संभव पुस्तकों रहित शिक्षण हो तथा भारतीय जीवन मूल्यों से परिचित कराते हुये, संस्कार निर्माण पर जोर दिया जाय। अक्षर ज्ञान व अंकों के ज्ञान से बच्चों को युक्त किया जाय। उच्च प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में भाषा प्रारंभिक गणित, सामाजिक जीवन, पर्यावरण, नैतिक मूल्यों का ज्ञान दिया जाना उचित होगा। 'मातृभाषा' में ही शिक्षण सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है। छात्र की उपलब्धियों का मूल्यांकन कैसे किया जाय यह अवश्य ही एक विचारणीय विषय है। इस दिशा में सीखने के स्तर पर अधिक ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। बिना परीक्षा के शिक्षा दी जा सकती है, परन्तु प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर कोई न कोई फिल्टर व्यवस्था (Filter System) अवश्य होनी चाहिये।

माध्यमिक स्तर की शिक्षा से वह अवस्था प्रारंभ होती है, जब बच्चा समझने व अभिव्यक्त करने में समर्थ होने लगता है। इस स्तर पर भाषा, गणित, सामाजिक ज्ञान, संस्कृति, धर्म, अधिकार-कर्तव्य, सामाजिक व प्राकृतिक वातावरण से संबंधित सामान्य शिक्षा दी जा सकती है। छात्र की रचनात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरित व पुष्ट करने हेतु इस स्तर से किसी न किसी प्रकार के कौशल (Skill) में छात्र को प्रेरित किया जाना अपेक्षित होना चाहिये। यहाँ भी मातृभाषा की ही प्रधानता होनी चाहिये, ऐसे उपाय किये जाने चाहिये जिससे बस्ते का बोझ कम से कम रहे। इस बात के प्रयास रहें कि छात्रों में प्रतियोगिता का भाव तो आये, परन्तु यह 'अंकों की भीषण प्रतियोगिता में न बदले।' छात्र की उपलब्धि का मापन परीक्षा व सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की मिश्रित व्यवस्था द्वारा किया जाय। परीक्षा ज्ञान को स्मरण रखने (Retaining) के स्थान पर समझकर (Understand) आत्मसात करने की क्षमता का परीक्षण करने वाली हो। उच्च माध्यमिक स्तर पर छात्र को भावी जीवन की आधारशिला मानते हुये शिक्षण होना चाहिये। इस स्तर पर छात्र भाषा, साहित्य, विज्ञान, समाज विज्ञान, विविध कलाओं में पारंगत होने की प्रारंभिक योग्यता प्राप्त करना है। एतदर्थ सामान्य शिक्षा से विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति की आधारशिला रखी जाती है। छात्र की रुचि प्रतिभा, प्रतिबद्धता आदि उसके विषय चयन को प्रभावित करते हैं। उसके अनुरूप ही विषयों का चयन होना लाभप्रद होगा। अन्य भाषाओं और विदेशी भाषाओं में से किसी एक से परिचित कराना उपयोगी होगा। अध्ययन के साथ साथ किसी न किसी कौशल व्यवसाय का व्यावहारिक व प्रारंभिक ज्ञान देना शिक्षा नीति का अभिन्न अंग होना चाहिये। उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा व्यक्ति को व्यावहारिक जीवन में प्रवेश के योग्य बनाकर स्वावलंबी व आजीविका अर्जित करने में समर्थ बनाने वाली होनी चाहिये। शिक्षा में असमानता एक बड़ी समस्या है, जिसका निदान केवल पड़ौस शिक्षा द्वारा ही संभव है।

उच्च शिक्षा समाज की प्रगति का इंजिन होती है। उच्च शिक्षा नये ज्ञान के सृजन व प्रसार का आधार होती है। विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक, तकनीकी, चिकित्सा, पेशेवर शिक्षा इसका अभिन्न अंग है। इसमें सैद्धान्तिक के साथ-साथ व्यावहारिक रूप में ज्ञान के उपयोग की क्षमता सृजित करना आवश्यक है। कौशल विकास योजनाओं द्वारा शिक्षा को व्यावहारिक व रोजगारपरक ही नहीं बनाया जा सकता है वरन नये-नये प्रयोगों, उपयोगों पद्धतियों, व्यवस्थाओं को विकसित भी किया जा सकता है। भारत में उच्च शिक्षा बहुत अधिक 'किताबी' हो चुकी है व वास्तविकता से दूर हो चुकी है। इसे प्रभावी व व्यावहारिक बनाने के उपाय शिक्षा नीति में सम्मिलित होने चाहिये। मेक इन इंडिया, कौशल विकास, डिजिटल इंडिया, स्मार्ट सिटीज आदि कार्यक्रमों को उच्च शिक्षा का अभिन्न अंग बनाकर व्यावहारिक स्वरूप दिया जा सकता है। उच्च शिक्षा व शोध और अनुसंधान गुथे हुये हैं। अब समय आ गया है कि इन्हें उद्योग व व्यवसायों से जोड़ा जाय, जिससे इनके लिये योग्य मानवीय संसाधन ही उपलब्ध न हों वरन् उनके आगे बढ़ाने में योग देने वाले बनें।

इन सभी को भारत की राष्ट्रीय शिक्षा बनाते समय ध्यान में रखना समय की पुकार है। परन्तु कोई यत्न तब तक सफल नहीं हो सकता है, जब तक कि समाज उसके वित्तीय पोषण के लिये तैयार न हो। शिक्षा पर जब तक देश बड़े संसाधन जुटाने में समर्थ नहीं होगा तब तक सार्थक परिणाम अनपेक्षित ही रहेंगे। ❑

बुद्धि को विचार चाहिए मगर विचार क्षणिक लाभ प्राप्त करने वाले नहीं हो। वैश्विक उष्मायन हो या आतंकवाद आज के सभी संकटों का मूल क्षणिक लाभ प्राप्त करने की प्रवृतियों का विकास है। शिक्षित व्यक्ति में समाज से पाने की कामना नहीं होकर समाज को देने का भाव होना चाहिए। आज उल्टा हो रहा है। शिक्षित व्यक्ति अधिकाधिक साधनों पर कब्जा करना चाहता है। आज शिक्षा का मूल ध्येय येन-केन प्रकारेण पैसा कमाना हो गया है। एमबीए में सिखाया जाता है कि सफलता प्राप्त करनी है- दिस वे और दैट वे। यह उचित नहीं है। शिक्षा का ध्येय आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होना चाहिए। प्रतिबद्धता सिखानी होगी।

भारतीयता हो शिक्षा नीति का आधार

❑ **डॉ. बजरंग लाल गुप्त**

देश में नई शिक्षा नीति का ताना-बाना बुना जा रहा है। शिक्षा पर विचार विमर्श का यह पहला अवसर नहीं है। आयोग, समितियाँ आदि देश की शिक्षा व्यवस्था पर विचार विमर्श करती रही हैं। अपनी रिपोर्टें देती रही हैं। रिपोर्टों में शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन के सुझाव भी दिए जाते रहे हैं। शिक्षा में परिवर्तन के नाम पर आज तक कुछ भी नहीं हुआ है। आज एक बार फिर शिक्षा पर विचार विमर्श हो रहा है। आज यह विचार करना है कि इतने प्रयास के बाद भी देश की शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किस कारण नहीं हुए?

दर्द बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की

भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन नहीं होने का बड़ा कारण शिक्षा की अवधारणाओं का पश्चिमी होना है। आयोगों, समितियों आदि ने भारतीय अवधारणाओं के आधार पर शिक्षा व्यवस्था को बदलने का प्रयास नहीं किया। वे मैकाले की अवधारणाओं के आधार पर ही शिक्षा में बदलाव के प्रयास करते रहे हैं। भारत की आत्मा को नहीं छू पाने के कारण वे सभी प्रयास असफल रहे हैं। स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती गई है और आज असहनीय हो गई है।

पश्चिमी चिन्तन भोगवादी व एकांगी रहा है। प्रकृति के दोहन का रहा है। व्यक्ति निर्माण के स्थान पर बाबू निर्माण का प्रयास होता रहा है। सामूहिक हित के स्थान पर व्यक्तिगत हित साधने की शिक्षा दी जाती रही है। इसी कारण देश में नैतिकता व आध्यात्मिकता समाप्त हो गई। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से व्यक्ति व समाज का कल्याण संभव नहीं है। आज ज्ञान शोषण का साधन बन रहा है। देश में बड़े घोटाले आज की शिक्षा प्राप्त लोग ही कर रहे हैं। शिक्षा से संपदा तो मिल रही है मगर सुख नहीं। दीर्घजीवी विकास की बातें सभी ओर की जा रही है मगर व्यवहार उसके विपरीत हो रहा है। प्रकृति के विनाश के कारण नए प्रकार के संकट उत्पन्न हो गए हैं।

पुरातन पर नित्य नूतन

भारतीय ज्ञान पुरातन होकर भी नित्य नूतन है। भारतीय चिन्तन प्रवाहमान है। भारतीय चिन्तन में शिक्षा का अर्थ जानकारी नहीं है। शिक्षा का अर्थ जानकारी हो तो गूगल महापण्डित हुआ। पुराने

ज्ञान को युगानुकूल करने की परम्परा हमारे यहाँ रही है। शिक्षा का अर्थ व्यक्ति को व्याधियों व क्लेशों से मुक्त करने का साधन है। तभी तो सा विद्या या विमुक्तये की कहावत बनी है। शिक्षा वह है जो बुद्धि को उलझनों से मुक्त करे। शिक्षा को व्यक्ति निर्माण का प्रशिक्षण माना गया है। अत: शिक्षा पर विचार करने से पूर्व यह जानना होगा कि व्यक्ति क्या है? आज की शिक्षा प्रणाली में तो विभिन्न विषय व्यक्ति को विभिन्न प्रकार से परिभाषित करते हैं।

एकात्म मानववाद में शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा को एकाकार करने को कहा गया है। यही शिक्षा का आदर्श हो सकता है। शरीर की आवश्यकता आहार है। जीवित रहने के लिए भोजन करना चाहिए कि भोजन करने के लिए जीना चाहिए। मन की आवश्यता प्रेम है। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा व्यक्ति को संवेदनशील बनाये। आज की शिक्षा मानवीय संवेदनाओं को नष्ट कर रही है। बुद्धि को विचार चाहिए मगर विचार क्षणिक लाभ प्राप्त करने वाले नहीं हो। वैश्विक उष्मायन हो या आतंकवाद आज के सभी संकटों का मूल क्षणिक लाभ प्राप्त करने की प्रवृतियों का विकास है। शिक्षित व्यक्ति में समाज से पाने की कामना नहीं होकर समाज को देने का भाव होना चाहिए। आज उल्टा हो रहा है। शिक्षित व्यक्ति अधिकाधिक साधनों पर कब्जा करना चाहता है। आज शिक्षा का मूल ध्येय येन-केन प्रकारेण पैसा कमाना हो गया है। एमबीए में सिखाया जाता है कि सफलता प्राप्त करनी है-दिस वे और दैट वे। यह उचित नहीं है। शिक्षा का ध्येय आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार होना चाहिए। प्रतिबद्धता सिखानी होगी।

उच्च तकनीकी, उच्च समस्यायें

हमें शिक्षा को भारतीय भावना केन्द्रित बनाने पर विचार करना होगा। भारत की परिस्थितियों, देश के संसाधनों, भारतीय संस्कृति व जीवन मूल्यों के अनुरूप शिक्षा नीति बनानी होगी। आयातित शिक्षा नीति भारत में सफल नहीं हो सकती। भारत को स्वतन्त्र कराने का उद्देश्य भी यही था। अब तक के अनुभवों से स्पष्ट हो गया है कि विदेशों की नकल करके हम सुखी नहीं हो सकते। गेहूँ की परम्परागत खेती को छोड़ कर हमने विदेशों की नकल कर उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग किया। इसका तात्कालिक लाभ हुआ मगर वह प्रयोग दीर्घकालिक सिद्ध नहीं हुआ। खेती की जमीन का एक बड़ा भाग बंजर हो गया। आज जैविक कृषि के रूप में हम पुन: उसी कृषि की ओर लौट रहे हैं जो महाभारत काल के पहले से चली आ रही है।

बिना सोचे समझे उच्च तकनीक को अपनाना उचित नहीं है। उच्च तकनीक, उच्च समस्याएँ उत्पन्न कर रही है। आज की तकनीक अधिक ऊर्जा खर्च कर अधिक उत्पादन प्राप्त करने की है। भारतीय परम्परा कम ऊर्जा खर्च कर अधिक उत्पादन प्राप्त करने की रही है। विश्व में भारतीय सोच को सराहा जा रहा है मगर हम अपने बच्चों को वे संस्कार नहीं दे पा रहे हैं। भारतीय सोच की शिक्षा व्यवस्था से ही यह संभव होगा।

भारतीय सोच की शिक्षा व्यवस्था का अर्थ यह नहीं कि हम अपने खिड़की दरवाजें बंद कर बैठेंगे। हम विश्व से उसी प्रकार का जीवन्त सम्पर्क रखेंगे जैसा सदियों से रखते आए हैं। भारतीय शिक्षा के बल पर हम ऐसे लोग तैयार कर सकेंगे जो विश्व समस्याओं के समाधान में मददगार बन सकें । शिक्षा के इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम शिक्षा की पाठ्यचर्या में भारतीय दृष्टिकोण से परिवर्तन करें। परिवर्तन करते समय क्षेत्रीय आवश्यकताओं को उचित महत्त्व देना होगा।

सफल क्रियान्वयन भी आवश्यक

शिक्षा नीति बना लेना ही पर्याप्त नहीं है, उसका सफल क्रियान्वयन भी आवश्यक है। शिक्षा संचालन सरकार पोषित व सरकार नियन्त्रित हो। समाजसेवी अलाभकारी संस्थाओं को भागीदार बनाना होगा। समाजसेवी संस्थाओं का नेटवर्क तैयार करना होगा। व्यावसायिक व लाभ कमाने वालों को दूर रखना होगा। सरकारी तन्त्र को देशहित में काम करना सिखाना होगा। सरकार के साहस दिखाए बिना अच्छे लोग मिल नहीं सकेंगे। अच्छे लोगों के सहयोग बिना अच्छी शिक्षा नहीं हो सकती।

युगानुकूलता की दृष्टि से देखें तो प्राचीन गुरुकुल प्रणाली आज व्यावहारिक नहीं है। इसे आज नहीं अपनाया जा सकता। शिक्षक के मान का उपयोग करना होगा। शिक्षक को केन्द्र में मान कर ही सारी शिक्षा व्यवस्था करनी होगी। शिक्षक सम्मान से रह सके ऐसी व्यवस्था करनी होगी। आज शिक्षक को राष्ट्र निर्माता तो कहा जाता है साथ ही दया का पात्र भी माना जाता है। इस विरोधाभास को दूर करना होगा। शिक्षक को जिम्मेदार बनाना होगा।

मूल्यांकन में समझ को महत्त्व देना होगा। कक्षा में रटा और परीक्षा में उगला की पद्धति को बदलना होगा। आज ट्यूशन चयन का साधन बन गया है। ट्यूशन की मदद से प्रतियोगी परीक्षा पास की जा रही है। इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। रटने के स्थान पर ज्ञान को जीवन में उतारने की व्यवस्था करनी होगी। शिक्षा में मातृभाषा को महत्त्व देना होगा। राष्ट्र भक्ति-मातृ भक्ति सिखानी होगी। शिक्षा बच्चों को स्वार्थी नहीं बनावें इस बात पर ध्यान देना होगा। ❑

(अर्थशास्त्री, लेखक, मौलिक चिंतक, सामाजिक अध्येता)

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के नागपुर में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन के अवसर पर दिए गए भाषण के संपादित अंश)

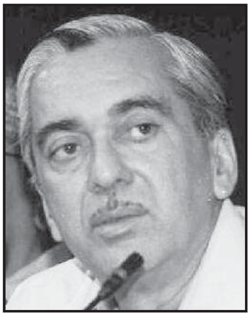

यूनेस्को ने शिक्षा के प्रारूप पर एक प्रतिवेदन बनवाया था, जिसे डिलोर्स कमीशन रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है, उसका विश्वव्यापी विश्लेषण भी हुआ। इसमें कहा गया था कि समय के साथ भौतिक संसाधनों और संपदा के मुकाबले ज्ञान संपदा का महत्त्व बढ़ता जाएगा और जो देश इसके पीछे रह जाएगा उसके पास प्रगति और विकास का दूसरा विकल्प उपलब्ध नहीं होगा। यह भी उभर कर आया था कि प्रत्येक देश को अपनी विकास की अवधारणा खुद विकसित करनी होगी। उधार ली गई अवधारणाओं से अनेक विकासशील देशों को विनाश ही मिला था। इन देशों में उच्च शिक्षा संस्थानों का उत्तरदायित्व अन्य के मुकाबले अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यहीं से विकास और प्रगति की नीतियों के निर्माण की आधारशिला संजोयी जाती है।

पहले बुनियाद मजबूत बने

❑ **जगमोहन सिंह राजपूत**

भारत सरकार नई शिक्षा नीति तैयार कर रही है। देश भर में सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएँ विचार-विमर्श में व्यस्त हैं। बैठकें, सेमिनार और सम्मेलन आयोजित हो रहे हैं। अधिकतर समय प्रतिभागी वर्तमान स्थिति को लेकर चिंता प्रकट करते हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार, उपयोगिता और गुणवत्ता को लेकर अनेक बार पूर्वाग्रहों का प्रकटीकरण भी होता है। नई शिक्षा नीति से सभी को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं और सभी के पास शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए सुझाव भी है। यह अपने में एक उपलब्धि का द्योतक है: अब ऐसा कोई नहीं, जो अपने बच्चों को शिक्षा न देना चाहता हो। यही नहीं, अब अनपढ़ माता-पिता भी चाहते हैं कि अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा एक अच्छे कार्यशील स्कूल में ही मिले। अपने प्रांतों को छोड़ कर दिहाड़ी पर कार्य करने आए पालक भी अपने बच्चों को निजी अंग्रेजी माध्यम स्कूल में दाखिला कराने का सपना पालते हैं। उनके लिए भी ऐसे स्कूल खुल रहे हैं, जहाँ अंग्रेजी माध्यम और 'पब्लिक स्कूल' जैसी पढ़ाई का वादा किया जाता है।

शिक्षा में बहुत कुछ उपलब्धि के तौर पर गिनाया जा सकता है : साक्षरता दर बढ़ी है, नामांकन हर स्तर पर बढ़ा है, स्कूलों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की संख्या तेजी से बढ़ी है। मगर जिस तेजी से सरकारी स्कूलों और विश्वविद्यालयों की साख घटी है वह सुधार की संभावनाओं तक पर प्रश्नचिह्न लगा देती है। इस पृष्ठभूमि में नई शिक्षा नीति निर्माताओं के सामने अत्यंत जटिल समस्याएँ उभर रही होंगी। सरकारें आँकड़ों को प्रगति के मानक के रूप में प्रस्तुत करती रहती हैं और अपनी उपलब्धियों से सदा प्रसन्न रहती हैं।

तेरह लाख से अधिक स्कूलों में लगभग तेईस करोड़ बच्चे पढ़ रहे हैं। साक्षरता दर भी पचहत्तर प्रतिशत के करीब पहुँच गई है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सरकारों ने हाथ खींच लिए हैं और परिणामस्वरूप निजीकरण को खूब बढ़ावा मिला है। अब अनेक तकनीकी और प्रबंधन संस्थान बंद हो रहे हैं। ये अपने में एक बड़ी कहानी कहते हैं। निजी प्रबंधकों ने फीस तो जम कर वसूली, मगर बदले में न तो पर्याप्त ज्ञान दिया, न ही उपयुक्त कौशल सिखाये। परिणामस्वरूप उपाधियाँ लेकर कार्यक्षेत्र में पहुँचने पर युवाओं को स्पष्ट बता दिया गया कि वे उत्तरदायित्व ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

यह कैसी विडंबना है कि उच्च शिक्षा में भागीदारी का प्रतिशत बढ़ाने के प्रयास हो रहे हैं और दूसरी ओर सैंकड़ों की संख्या में महाविद्यालय बंद हो रहे हैं। यह कितने असमंजस की स्थिति है, इसका एक उदाहरण लोग अब भी अक्सर याद करते हैं 2009-10 में एकाएक चवालीस मानद विश्वविद्यालयों को स्तरहीन पाया गया और उन्हें बंद करने के आदेश दिए गए। अन्य चवालीस को कहा गया कि क्यों न उनके खिलाफ कार्रवाई की जाए। लाखों छात्रों और उनके माता-पिता को भारी मानसिक संत्रास में झोंक दिया गया। आज तक सभी विश्वविद्यालय अपनी जगह विद्यमान है, कार्य कर रहे हैं, और अब भी निगरानी में है।

उच्च शिक्षा-व्यवस्था की चूलें व्यवस्था के स्तर पर पूरी तरह हिल चुकी है और इसके चलते गुणवत्ता लगातार नीचे जा रही है। विश्व की श्रेष्ठ संस्थाओं में भारत की अनुपस्थिति पर चर्चा अक्सर होती है, मगर जो आंतरिक स्थिति जानते हैं उन्हें कोई आश्चर्य नहीं होता।

उच्च शिक्षा में भारी भटकाव कैसे आ गया? यहाँ से पढ़ कर जाने वाले भारतीय युवाओं ने 'नासा' और 'सिलिकॉन वैली' में भारत की ज्ञान परंपरा का गौरव विश्व के सामने स्थापित किया था। आज से तीस-चालीस साल पहले केन्द्रीय ही नहीं, राज्यों के विश्वविद्यालयों की भी अपनी सम्मानजनक साख थी। जैसे-जैसे संख्या बढ़ी, संस्थाओं की साख के साथ-साथ शिक्षा की गुणवत्ता भी निराशाजनक स्तर पर पहुँच गई। उच्च शिक्षा के उद्देश्य ही पीछे छूट गए।

ज्ञान को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने के

समग्र तंत्र का संयोजन और मार्गदर्शन कराती है उच्च शिक्षा। इसके लिए इन संस्थाओं का नेतृत्व कर्मठ और लब्ध-प्रतिष्ठत विद्वानों के हाथ में ही होना आवश्यक है। उस समय को याद किया जा सकता है जब डॉ. राधाकृष्णन, सर आशुतोष मुखर्जी, पंडित गंगानाथ झा, डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदलियार, डॉ. अमरनाथ झा, डॉ. रामधारी सिंह दिनकर जैसे मनीषी कुलपति पद स्वीकार कर उसे गरिमा प्रदान करते थे। क्या तब कल्पना भी की जा सकती थी कि कुलपति के पद पर नियुक्तियाँ प्रार्थना पत्र मँगा कर, साक्षात्कार करके होंगी? जब यहीं पर योग्यता और शैक्षिक अवदान का अवमूल्यन हो जाएगा, तब विश्वविद्यालय ज्ञानार्जन और ज्ञान-सर्जन के केन्द्र कैसे बन पाएंगे? जो कुछ परिवर्तन हो चुका है, उसका प्रवाह रोकने का कोई बड़ा प्रयास अब भी दिखाई नहीं देता है। अब यह सामान्यतया सभी देख रहे हैं कि अच्छे समझे जाने वाले उच्च शिक्षा संस्थानों में भी सारा जोर तकनीकी ज्ञान और पैकेज के इर्द-गिर्द सीमित हो गया है। अकादमिक नियुक्तियों में गणित लगा कर पात्रता निर्धारित की जाती है। एक उच्चस्तरीय शोधपत्र प्रकाशित कर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति पाने वाला वैज्ञानिक उस व्यक्ति से पिछड़ जाएगा, जिसने केवल अपने प्रकाशनों की संख्या पर जोर दिया है, राष्ट्रीय स्तर के अनेक सम्मेलनों में भागीदारी दिखाई है। विश्वविद्यालयों में 'एपीआई' नाम से प्रचलित चयन पद्धति ने गुणवत्ता को दशकों पीछे छोड़ दिया है। अब यह अनेक विद्वान् शोधकर्ता भी मानने लगे हैं कि पहली प्राथमिकता उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वातावरण सुधार, चयन पद्धति और छात्र-अध्यापक के बीच के संबंधों को जीवंत बनाने की होनी चाहिए।

हर सभ्यता और समाज को अपनी परंपरा, पद्धति, ज्ञानभंडार, संस्कृति, इतिहास पर गर्व होता है और वह यह प्रयत्न पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रखता है कि यह संचित पूंजी आगे की पीढ़ी तक पहुँचे और यह अपेक्षा भी करती है कि आगे की पीढ़ी इसे और समृद्ध करे तथा ज्ञान के नए क्षितिज खोजे। ज्ञान को भौगोलिक सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता, इसलिए विश्वस्तर पर यही सोच आगे बढ़ती है।

यूनेस्को ने शिक्षा के प्रारूप पर एक प्रतिवेदन बनवाया था, जिसे डिलोर्स कमीशन रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है, उसका विश्वव्यापी विश्लेषण भी हुआ। इसमें कहा गया था कि समय के साथ भौतिक संसाधनों और संपदा के मुकाबले ज्ञान संपदा का महत्त्व बढ़ता जाएगा और जो देश इसके पीछे रह जाएगा उसके पास प्रगति और विकास का दूसरा विकल्प उपलब्ध नहीं होगा।

यह भी उभर कर आया था कि प्रत्येक देश को अपनी विकास की अवधारणा खुद विकसित करनी होगी। उधार ली गई अवधारणाओं से अनेक विकासशील देशों को विनाश ही मिला था। इन देशों में उच्च शिक्षा संस्थानों का उत्तरदायित्व अन्य के मुकाबले अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि यहीं से विकास और प्रगति की नीतियों के निर्माण की आधारशिला संजोयी जाती है। आज विश्व में सिलिकॉन वैली की चर्चा होती है। इसका ज्ञान केन्द्र- नॉलेज एपिसेंटर-स्टेनफर्ड विश्वविद्यालय है। भारत में बंगलुरु में सिलिकॉन वैली जैसा प्रयत्न किया गया, मगर हम ऐसे किसी ज्ञान केन्द्र की स्थापना नहीं कर पाए, जो स्टेनफर्ड जैसा योगदान कर पाता।

भारत के विश्वविद्यालयों को अपनी प्राथमिकताओं में अगले कुछ वर्ष तक यह प्रयास करना होगा कि हर स्तर पर अच्छे शिक्षक कैसे तैयार किए जाएँ। स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता सुधारे बगैर उच्च शिक्षा और शोध में सुधार की अपेक्षा अधूरी ही रहेगी। ऐसा तभी हो पाएगा, जब इन संस्थानों में कार्य कर रहे अध्यापक और विद्यार्थी यह मान कर अध्ययन, नवाचार और शोध करें कि वे एक बड़े लक्ष्य की पूर्ति में भागीदार हैं। वे राष्ट्र निर्माण की धुरी हैं और उनका हर प्रयास देश की ज्ञान-संपदा की तिजोरी में वृद्धि कर रहा है। सफलता जहाँ भी मिली है, इस प्रकार के चिंतन और समझ के आधार पर मिली है। क्या नई शिक्षा नीति इस दृष्टिकोण परिवर्तन की आवश्यकता को साकार रूप दे पाएगी? ❑

(पूर्व निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी.)

शिक्षा में स्वराज

❑ गिरीश्वर मिश्र

आयातित आधुनिक शिक्षा की ज्ञान संस्थाओं की स्थापना के सहारे देश के मानस को हमने परे धकेल उसकी जगह एक ऐसा आयातित मन बिठाया जो न हमारे अतीत से जुड़ पाता है, न वर्तमान से और न भविष्य से। सोच-विचार में सर्जना को तिलांजलि देकर हम मात्र अनुकृति दर अनुकृति को ही बढ़ावा देते रहे हैं। नई शिक्षा नीति में यह ध्यान रखना होगा कि यहाँ की धरती पर उपजे विचारों और सांस्कृतिक संवेदना के विकास के साथ ही हम प्रभावी और सर्जनात्मक ढंग से सोचने वाले मानस को विकसित कर सकेंगे। हमने आँख मूंदकर विदेशी संस्कृति और विचार को कल्याणकारी मानते हुए शिक्षा के आधार के रूप में स्वीकार किया और अपनी संस्कृति को कोई मौका ही नहीं दिया।

भारत में अंग्रेजी राज ने यह संभव कर दिखाया कि वैचारिक साम्राज्य की स्थापना राजनीतिक साम्राज्य की स्थापना से कहीं ज्यादा प्रभावी होती है, क्योंकि वह समाज के जीवन और संस्कृति में गहरी घुसपैठ कर जाती है। वह अचेतन रूप से आदमी की सोच-विचार की प्रक्रिया और वैचारिक जीवन को बदल देती है और इस तरह से कि किसी को अंदाज भी नहीं लगता। कोई बाहरी देश यदि आक्रमण करे तो उसका प्रतिकार लड़कर किया जाता है और सजगता रहे तो उसे रोका जा सकता है। हमने 1965 के युद्ध को अभी-अभी याद किया है, जो इसका प्रमाण भी है, पर जब हम मन में और अपने विचार में कठिनाई को महसूस करना बंद कर देते हैं तो असली गुलामी शुरू होती है। तब जो वास्तव में अकल्याणकारी और अमंगल का द्योतक होता है वह हमें श्रेयस्कर और प्रिय लगने लगता है। हम ललचाई नजरों से उसे देखने लगते हैं। यह दासता का शायद निकृष्टतम रूप होता है। सांस्कृतिक अधीनता सिर्फ किसी पराई संस्कृति को अपनाने तक ही सीमित नहीं रहती वह अपनी संस्कृति का उन्मूलन भी करने लगती है, जैसा कि दार्शनिक के.सी. भट्टाचार्य ने स्वतंत्रता मिलने के दो दशक पहले विचारों में स्वराज की बात करते हुए आगाह किया था कि जब बिना किसी समीक्षा या मूल्यांकन के बाहरी प्रभाव को विवेकशून्य होकर अपना लेते हैं तो दूसरी संस्कृति हम पर अपना आधिपत्य जमाते हुए हमें अपने वश में कर लेती है। इस तरह की स्थिति समाज में गहरे पराभव और दासता की द्योतक होती है। भट्टाचार्य ने यह भी कहा था कि जब इस बात का अनुभव होता है और उस अनुभव को हम अपनी प्रेरणा बनाते हैं तो विचारों में स्वराज आता है। तब एक नया आत्मबोध उपजता है।

प्रश्न है कि क्या इस तरह की स्थिति भारतीय समाज के जीवन में कभी आ सकी? महात्मा गाँधी, संत विनोबा, डॉ. लोहिया और पंडित दीनदयाल उपाध्याय सरीखे कुछ विचारकों ने इस पर जरूर सोचा और स्वराज और स्वदेशी की जमकर वकालत की। उसके कुछ प्रयोग भी शुरू किए, पर मानसिक पराभव इतना जबर्दस्त था कि इन प्रयासों को व्यापक राजनीतिक संस्पर्श नहीं मिल सका और वे अभी भी प्रतीक्षारत हैं। आज जब भारत की शिक्षा नीति पर विचार चल रहा है तो वैचारिक स्वराज का प्रश्न खड़ा होता है, क्योंकि बिना वैचारिक स्वराज के ज्ञान के क्षेत्र में कोई गति नहीं दिखती। हमें शिक्षा के आयोजन में इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचना होगा।

हमने आँख मूंदकर विदेशी संस्कृति और विचार को कल्याणकारी मानते हुए शिक्षा के आधार के रूप में स्वीकार किया और अपनी संस्कृति को कोई मौका ही नहीं दिया। उसे सिरे से अवैज्ञानिक, दकियानूसी और विकास विरोधी घोषित कर खारिज कर दिया। देशज संस्कृति की समृद्धि, उसका परिचय और मूल्याँकन तक हमने नहीं

किया और मानक के रूप में पश्चिमी ज्ञान और संस्कृति को स्वीकार किया और उसे परोसा। यदा-कदा उसी विदेशी खाँचे से अपनी संस्कृति को देखने की कोशिश भी की गई। अक्सर यह दिखाना ही ध्येय बना कि यहाँ भारत में भी वैसा ही था या वैसा ही मिलता-जुलता था, पर मानक वही पश्चिमी संसार और उसका विचार ही रहता है। अब हम अपनी संस्कृति और ज्ञान परंपरा से इतने कटते जा रहे हैं कि भारत के देशज ज्ञान की तरफ कौतूहल और आश्चर्य मिश्रित प्रतिक्रिया करते हैं। उसे अपनी चीज के रूप में नहीं देख पाते हैं। वह पराई ही बनी रहती है। उसे पश्चिमी ज्ञान के खाँचे में फिट किया जाता है, क्योंकि वही ठीक करार दिया गया है। समाज विज्ञान में बहुत सी बातें अजूबे भारत की पहचानी गई हैं, पर वह ज्ञान और विमर्श का हिस्सा नहीं बन सकी हैं। सच तो यही है कि विचार, विचार करने की पद्धति और उसकी प्रामाणिकता की व्यवस्था का पूरा विन्यास या ज्ञान-प्रौद्योगिकी हमने पश्चिम से आयातित की और उसी का वर्चस्व भी बना। दुर्भाग्यवश उसे वैश्विक और सार्वजनीन के रूप में पेश और प्रचारित किया जाता रहा है। इस तरह का रूढ़िवादी ज्ञान किसी विवेक को विकसित करने में बहुत सहायक नहीं हो सकता है। हाँ, हममें से कुछ लोग ज्ञान के विकास का निराधार दंभ जरूर पाल रहे हैं।

इस ढाँचे में चलने वाली शिक्षा और उसके माध्यम से एक आधुनिक मानस के निर्माण की आकाँक्षा हममें बलवती रही और उसके कुछ लाभ भी हमें मिले, पर इसका सामंजस्य भारतीय मानस के साथ नहीं बैठाया गया। अब स्थिति कुछ ऐसी बनती सी प्रतीत होती है मानों भारतीय मानस विस्मृत हो चला है और चेतन जगत् में खास अहमियत नहीं रखता है। शायद अनपढ़ों और कमपढ़ों के यहाँ कुछ ज्यादा और पढ़े लोगों के यहाँ गाहे-बगाहे रीति रिवाजों आदि में याद आ जाता हो अन्यथा पढ़े लिखों के लिए तो वह अनावश्यक भार तुल्य ही है। भारतीय संस्कृति के लिए उनमें कोई बहुत उत्सुकता और आकर्षण शेष नहीं दिखता है। परिस्थिति कुछ-कुछ इस तरह की लगती है कि हम पश्चिम को अभी तक पूरी तरह एक पश्चिमी मन की तरह अपना नहीं सके हैं, पर अपनाने की कोशिश रहे हैं और उसके आशय तक पहुँचने की चेष्टा भी कर रहे हैं। हमने अपनी शैक्षिक संस्थाओं को भी उसी के अनुरूप ढाला है, शोध आदि की कवायद भी कर रहे हैं, पर वैचारिक दृष्टि से उसका क्या लाभ मिल पा रहा है, यह चिंता का विषय हो रहा है। कुछ एक अपवादों को छोड़ दें तो सर्जनात्मक दृष्टि से हम न तो विश्वचिंतन को और न ही भारतीय चिंतन को कुछ खास योगदान दे सके हैं। हम अपना ठीक से मूल्यांकन ही नहीं कर पाते कि कितने पानी में हैं। हमारा पुस्तकीय ज्ञान भी अपने समाज और यथार्थ से कोई सार्थक रिश्ता नहीं जोड़ पाया है। हमने अपनी स्थिति का ठीक से आंतरिक जायजा भी नहीं लिया है।

यह जरूर है कि पश्चिमी चिंतन के नए से नए आंदोलन को समझने का यत्न तुरंत करते हैं और उसकी नकल भी करते हैं। प्राय: पश्चिमी सोच से अनुप्राणित हमारी शिक्षा का संदर्भ बिंदु और प्रमाण का आधार पश्चिम ही है, पर गाँधीजी के हिन्दू स्वराज को छोड़ दें तो पश्चिमी संस्कृति को भारत की दृष्टि से हमने कभी नहीं जाँचा परखा। हमने पश्चिमी और भारतीय विचारों का कोई संश्लेषण भी नहीं किया। आयातित आधुनिक शिक्षा की ज्ञान संस्थाओं की स्थापना के सहारे देश के मानस को हमने परे धकेल उसकी जगह एक ऐसा आयातित मन बिठाया जो न हमारे अतीत से जुड़ पाता है, न वर्तमान से और न भविष्य से। सोच-विचार में सर्जना को तिलांजलि देकर हम मात्र अनुकृति दर अनुकृति को ही बढ़ावा देते रहे हैं। नई शिक्षा नीति में यह ध्यान रखना होगा कि यहाँ की धरती पर उपजे विचारों और सांस्कृतिक संवेदना के विकास के साथ ही हम प्रभावी और सर्जनात्मक ढंग से सोचने वाले मानस को विकसित कर सकेंगे। ❑

(लेखक महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के कुलपति हैं)

समग्र विकास का आधार: नई शिक्षा नीति

विद्यार्थी अधिगम में नवीन वैज्ञानिक तकनीकी का उपयोग होने से ही शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होगी। विनियमन का उद्देश्य शिक्षा की पहुँच, विस्तार, गुणवत्ता व उत्कृष्टता होनी चाहिये। केन्द्रीय शिक्षण संस्थाएँ सामाजिक परिवर्तन के साथ - साथ देश के सम्पूर्ण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। यह समाज को शैक्षिक पोषण प्रदान कर सबल, सक्षम व सशक्त समाज का निर्माण कर सकते हैं। समाज के सभी वर्गों में ज्ञान व शोध का संचार कर, परम्परागत विषयक ज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना, प्राचीन व अर्वाचीन ज्ञान के मध्य सेतु विकसित कर उनका विस्तार कर नया आयाम देना आदि कार्यों का सम्पादन करना चाहिए।

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास के लिए विभिन्न योजनाओं, नीतियों, परियोजनाओं, व दृष्टि-पत्र की आवश्यकता के साथ-साथ इनका सतत् मूल्यांकन आवश्यक है। उपरोक्त सभी की सफलता के लिए कार्य योजना व उनका क्रियान्वयन आवश्यक अवयव है। जब हम सम्पूर्ण विकास की बात करते हैं तब ध्यान शिक्षा पर ही केन्द्रित हो जाता है क्योंकि इसी के मूल में ही सर्वांगीण विकास का बीज सुसुप्त अवस्था में रहता है, उसे जाग्रत करने की आवश्यकता है, इसी उद्देश्य से नीतियों व योजनाओं का निर्माण होता है व देश के सामने विषय-वस्तु को रखा जाता है ताकि सभी अपने सुझाव देकर विकास यात्रा में अपना योगदान कर सकें। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्रीमती स्मृति जुबिन इरानी की अध्यक्षता में 21 मार्च, 2015 को नई शिक्षा नीति के संदर्भ में एक बैठक का आयोजन किया गया। जिसमें राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों के शिक्षा मंत्री, उच्च शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा व साक्षरता सचिव सहित मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधिकारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, अखिल भारतीय तकनीकी परिषद् के कार्यकारी अध्यक्ष सहित कई शिक्षाविद् उपस्थित रहे। उच्च शिक्षा के संबंध में नीतिगत परामर्श के लिए देश के सामने विभिन्न बिन्दुओं पर विचार प्रस्तुत किये गये, जिसमें देश का कोई भी नागरिक अपने सुझाव दे सकता है इस संबंध में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों व शिक्षण संस्थाओं में कार्यशालाएँ,सेमीनार व सिम्पोजियम रखे गये। प्रस्तुत आलेख में इन्हीं प्रकरणों के संबंध में सुझाव देने का प्रयास किया गया है।

स्वाधीनता के बाद देश के शैक्षणिक उन्नयन के लिए योजनागत विकास के द्वारा विभिन्न आयोगों का गठन किया गया। सभी ने सुझाव दिये, परन्तु समग्र विकास सतत् प्रक्रिया है अत: समय-समय पर नीतियों की समीक्षा व मूल्यांकन कर नई समयानुकुल समग्र नीति की आवश्यकता होती है। शिक्षा में गुणवत्ता के लिए अभिशासन में सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में अनियोजित विस्तार के कारण गुणवत्ता प्रभावित हुई है। इसी कारण शिक्षित स्नातक अपने कौशल का प्रदर्शन नहीं कर सकते क्योंकि कौशल के लिए आधारभूत ढ़ाँचे के साथ-साथ उच्च स्तरीय शिक्षण की आवश्यकता होती

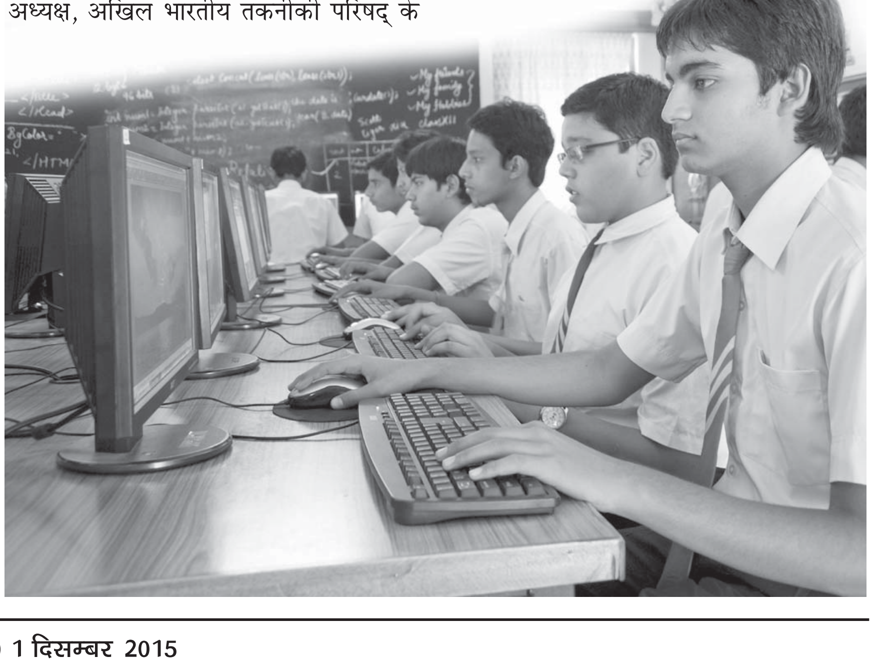

है। अत: व्यक्तिगत स्तर एवं संस्थागत स्तर पर बहु आयामी नियामक तंत्र को विकसित कर उसे प्रभावशाली बनाना चाहिये।

उच्च शिक्षा के प्रशासनिक अधिकारियों व नौकरशाहों का न्यूनतम या शून्य समावेश या हस्तक्षेप होना चाहिये क्योंकि उच्च शिक्षा ''विशिष्ट प्रशासन'' से निर्गमित होती है, न कि ''सामान्य प्रशासन'' से, विशिष्ट प्रशासन में उच्च शिक्षा के शिक्षक प्रत्येक शिक्षा के आयोगों, प्रकल्पों व उन्नयन का विस्तृत अध्ययन कर कार्य योजना बनाते हैं। उच्च शिक्षा से जुड़े प्राध्यापक ही इसके प्रशासक या प्रबंधक होने चाहिए। इसी प्रकार की व्यवस्था इसरो (Indian Space Research Organisation) में की गई है। प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायत्तता का उच्च शिक्षा में विशेष महत्व है। प्रशासनिक स्वायत्तता (Administrative Autonomy) ''लोकल लेवल मॉनिटरिंग'' में सहायता प्रदान करती है जबकि वित्तीय स्वायत्तता (Financial autonomy) संस्थागत होने वाले खर्चों को एक रूप करते हुये उनमें कमी लाती है। शिक्षण संस्थाओं के उत्कृष्ट अकादमिक प्रदर्शन के लिए वित्त पोषण का विशेष महत्त्व है। केन्द्रीय सूची के बिन्दु संख्या- 66 में उच्च शिक्षा का नियंत्रण, व्यय व समन्वित विकास (Integrated development) का उल्लेख है जबकि समवर्ती सूची के बिन्दु संख्या - 20 में आर्थिक, सामाजिक, कार्य योजना का दायित्व केन्द्र सरकार का है। अत: उच्च शिक्षा, केन्द्र व राज्यों का संयुक्त उपक्रम (Joint- venture) न बनकर एक साझीदार के रूप में विकसित हुआ है, जहाँ शिक्षा का वित्त पोषण केन्द्र के द्वारा होता है, अत: केन्द्र हमेशा बड़े भाई की भूमिका में रहता है। इसी कारण स्पष्ट सीमांकन नहीं है। देश में करीब 633 विश्वविद्यालय में 43 केन्द्रीय विश्वविद्यालय है। यहाँ से 7 प्रतिशत डिग्रियाँ प्रदान की जाती हैं। जबकि राज्य विश्वविद्यालयों की संख्या करीब 297 है व यहाँ से 47 प्रतिशत डिग्रियाँ प्रदान की जाती है, किन्तु वित्त पोषण का वितरण केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को 76.81 प्रतिशत व राज्य विश्वविद्यालयों को 17.61 प्रतिशत किया जाता है। अत: इस परिप्रेक्ष्य में सकल नामांकन अनुपात (GER) के आधार पर वित्त पोषण के साथ - साथ वित्तीय स्वायत्तता होनी चाहिये। समाज भी अपना आर्थिक योगदान देकर उच्च शिक्षा को सुलभ बना सकता है। आज विश्व में बहुत बड़े विश्वविद्यालय इसी प्रणाली पर चलते हुए वित्तीय स्वायत्तता का लाभ उठा रहे हैं। प्राचीन भारत में भी इसी प्रकार के उदाहरण देखने को मिलते हैं। अत: संस्थागत वित्त पोषण में केवल केन्द्र व राज्य के सहयोग के साथ-साथ समाज का भी बराबर योगदान होना चाहिये क्योंकि अंतिम जनशक्ति या उपभोक्ता समाज ही है।

आज हम संस्थानों की गुणवत्ता रैंकिंग एव प्रत्यायन की बात करते हैं इसके लिए कई सुझाव व परिषदों का निर्माण भी किया गया है। परंतु विश्व रैंकिंग का आधार संस्थागत उत्कृष्टता (Institutional performance) शोध, नवाचार, शिक्षण व संसाधन हैं। इसी दृष्टि से संस्थागत निष्पादन के आंकलन, संकाय सदस्यों की ख्याति, नियोक्ताओं के बीच ख्याति, संसाधन की उपलब्धता, अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों की ओर क्रियाकलापों में सहभागिता, आंतरिक गुणवत्ता, आश्वासन प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् के साथ - साथ कार्य पद्धति और संस्थाओं के समग्र गुणवत्ता सुधार आदि विषयों को केन्द्र बिन्दु मानकर विचार करना चाहिये। साथ ही शिक्षण संस्थाओं में नियुक्तियों के लिए समान मापदण्डों का पालन होना चाहिये। विनियमन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए नियामकों की अधिकता नहीं होनी चाहिए। एक ही नियामक तंत्र निर्धारित मापदण्डों के आधार पर पारदर्शिता से कार्य करें। ''हस्तक्षेप मुक्त'' विश्वविद्यालयों की स्थापना, सरकारी प्रभाव एवं नियंत्रण की भूमिका कम होनी चाहिए। विद्यार्थियों के प्रवेश की अनुमति, पाठ्यक्रम संचालन, नवीन विषयों की अनुमति, अभिशासन एवं प्रबंधन का दायित्व संस्था-प्रधानों को होना चाहिये। विद्यार्थी अधिगम में नवीन वैज्ञानिक तकनीक का उपयोग होने से ही शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होगी। विनियमन का उद्देश्य शिक्षा की पहुँच, विस्तार, गुणवत्ता व उत्कृष्टता होनी चाहिये। केन्द्रीय शिक्षण संस्थाएँ सामाजिक परिवर्तन के साथ - साथ देश के सम्पूर्ण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। यह समाज को शैक्षिक पोषण प्रदान कर सबल, सक्षम व सशक्त समाज का निर्माण कर सकते हैं। समाज के सभी वर्गों में ज्ञान व शोध का संचार कर, परम्परागत विषयक ज्ञान को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना, प्राचीन व अर्वाचीन ज्ञान के मध्य सेतु विकसित कर उनका विस्तार कर नया आयाम देना आदि कार्यों का सम्पादन करना चाहिए।

राज्य सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को बेहतर बनाने के लिए आधारभूत सुविधाओं का विकास अनुसंधान, पुस्तकालय, वाचनालय, वित्त पोषण कर और अभिशासन में नौकरशाही का न्यूनतम हस्तक्षेप, रिक्त पड़े पदों पर नियुक्तियाँ, शिक्षकों को सिर्फ शिक्षण, शोध, अभिशासन व प्रबंधन में भूमिका होना, उपरोक्त सभी विषयों को उचित मॉनिटरिंग के लिए सुव्यवस्थित प्रणालियों को विकसित कर कमियों को दूर करना अपेक्षित है। आज भारत विश्व पटल पर आर्थिक व्यवस्था के रूप में उभर रहा है, परन्तु देश में शिक्षित बेराजगारों की संख्या चिन्ता का विषय है। हमारे यहाँ श्रम-शक्ति व कार्यशील शक्ति बहुत उत्तम है। अत: सभी को कौशल विकास से जोड़ना होगा। हर हाथ अपने कौशल के साथ विकास के साथ उत्पादन में योगदान कर सकता है। उसके

लिए पृथक् विश्वविद्यालयों की स्थापना, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम या एजेंसियाँ विकसित कर हम डेमोग्राफिक डिविडेंट को उत्पादन प्रक्रिया से जोड़ सकते हैं। यही श्रम शक्ति तकनीकी दक्षता प्राप्त कर सकल घरेलू उत्पादन में योगदान करेगी। कौशल विकास कार्यक्रम में निजी सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा देना होगा। कौशल विकास से ही आय का सृजन व प्रवाह होगा इसी से हमारे युवा उद्यमी रोजगार के अवसर उपलब्ध करा सकेंगे। जब हम कौशल विकास की बात करते हैं तब ध्यान में आता है कि कार्यशील या श्रमसाध्य व्यक्ति को अनवरत पढ़ाई के अवसर भी मिले। अतः मुक्त तथा दूरस्थ शिक्षा को बढ़ावा देते हुए ऑनलाइन पाठयक्रमों का संवर्धन करना चाहिए। मॉक (Massive open online courses) को प्रोत्साहन देते हुए दूरस्थ शिक्षा को उच्चतर शिक्षा के पूरक के रुप में विकसित करना चाहिए। प्रौद्योगिकी समर्थित, शिक्षा के कारण ही सूचना व संचार प्रौद्योगिकी ने शिक्षण के आयाम ही बदल दिये, इसी कारण ई-लर्निंग (Electronic learning) की माँग बढ़ती जा रही है। उल्लेखनीय है कि 2009 में राष्ट्रीय शिक्षा अभियान ने शिक्षा व शिक्षण में सूचना व संचार तकनीकी की महत्ता को बताया। अतः हमे डिजिटल लाइब्रेरी, ई-बुक्स, ई-लाइब्रेरी, वाई-फाई (Wi-Fi), ई- स्मार्ट क्लास रूम पर ध्यान देकर वैश्विक स्तर पर होने वाले शोध, नवाचारों की जानकारी विद्यार्थियों को सुलभ कराने का प्रयास करना होगा। विभिन्न समूहों के विद्यार्थियों का शिक्षण संस्थाओं में सकल नामांकन अनुपात (GER) को बढ़ाना, महिलाओं के नामांकन को प्रोत्साहन देना, विद्यमान संस्थाओं में गुणवत्ता व सुविधाओं का विकास करना, समान वित्त वितरण आदि प्रयासों से क्षेत्रीय विषमता को पाटने में सहायता मिलेगी।

लैंगिक और सामाजिक अंतरालों को पाटने के लिए उच्च शिक्षा में इन वर्गो को छात्रवृति प्रदान कर, इनका सतत मूल्यांकन कर इन्हें प्रोत्साहन प्रदान करना सामाजिक सरोकार व समरसता कार्यक्रमों के आयोजन में सहभागिता प्रदान करना। उच्च शिक्षा को समाज से जोड़कर शिक्षा के उदेश्य को प्राप्त किया जा सकता है यदि हम तक्षशिला युग की बात करें तो स्मरण होगा कि यही विश्व का प्रथम स्थापित विश्वविद्यालय था। इसमें ज्ञान, कौशल व सामाजिक सरोकारों पर ध्यान दिया जाता था। इसी प्रकार हरियाणा के बी.पी.एस ग्रामीण महिला विश्वविद्यालय के दृष्टि-पत्र में समाज केन्दित शिक्षा (Socially relevant education) के अन्तर्गत कार्ययोजना बनाई गई है, जैसे उपला बनाने वाली मशीन। सर्वोत्तम अध्यापक तभी तैयार हो सकते हैं जब उनके शैक्षिक उन्नयन के लिए सभी सुविधाएँ प्रदान की जाए। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, अतः इसके द्वारा सांस्कृतिक एकीकरण को बढ़ावा विभिन्न अन्तर्राज्यीय कार्यक्रमों के द्वारा किया जा सकता है यदि हमें कौशल शिक्षा के साथ-साथ रोजगार की संभावनाओं को विकसित करना है तो हमें सार्वजनिक निजी भागीदारी को प्रोत्साहन के साथ उद्योग जगत् से तारतम्य रखना होगा। आई.सी.टी. (ICT) के उपयोग द्वारा ज्ञान व शोध में वृद्धि कर हम उच्चशिक्षा का अंतर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त कर सकते हैं।

नये ज्ञान के सृजन के लिए सूचना एवं प्रौद्योगिकी ने सभी मार्ग सुलभ बना दिए हैं किन्तु फिर भी सिरे से अंत तक नवाचार ही बहुआयामी विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा।

उपरोक्त सभी सुझावों का समावेश नई शिक्षा नीति में अपेक्षित है परंतु यदि हम सभी राष्ट्र हित को सर्वोपरि मानकर सभी अपने दायित्त्व का निष्ठापूर्वक निर्वहन करें तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे विश्वविद्यालयों की रैकिंग विश्वस्तरीय हो जायेगी चाहे फिर थेस 2008 (Times Highir Education Suppliment THES 2008) या फिर सजटू 2008 (Shanghai Jiao Tang University, SJTU 2008) द्वारा ही मूल्यांकन क्यों न कराया जाए ? आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा-शिक्षण से जुड़ा हुआ प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वयं का आंतरिक मूल्यांकन करे, फिर बाहरी मूल्यांकन अर्थहीन हो जायेगा व हम उत्कृष्ट मानबिंदु स्थापित कर सकेंगे। ❑

(विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा वि.वि., अम्बिकापुर, छ.ग.)

नवीन भारतीय शिक्षा नीति बने नूतन-पुरातन का संगम

❑ डॉ. रेखा भट्ट

प्राथमिक शिक्षा, जो जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था में बालक में स्थापित किये गये आदर्श और जीवन मूल्य ही उसके भावी जीवन में विकसित और प्रस्फुटित होते हैं। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा को उपेक्षित भाव से देखा गया। शिक्षा के सरकारीकरण-निजीकरण कर दिये जाने से 70 वर्षों बाद मैकाले द्वारा प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के दुष्परिणाम नजर आने लगे हैं। पाश्चात्य शिक्षा के अन्धानुकरण में जीवन मूल्यों के क्षरण ने सम्पूर्ण भारतीय समाज को प्रभावित किया है। भावी युवा पीढ़ी की सुदृढ़ नींव को कमजोर कर दिया। आधुनिकता के नाम पर प्रचलित इस शिक्षा से मनुष्य न केवल प्रकृति से दूर होता गया वरन् प्रकृति का अनवरत शोषण भी करने लगा।

प्राचीनकाल से भारतीय शिक्षा का सदैव एक ही लक्ष्य रहा है – शिक्षार्थी के जीवन का सम्पूर्ण विकास। भारतीय शिक्षा पद्धति हजारों वर्षों से जीवन के उच्च आदर्शों की पालक व संरक्षक रही है। यह ऐसी पद्धति रही है, जिससे समुचित शिक्षा ग्रहण करके व्यक्ति स्वयं अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाने में सक्षम बनता था। भारतीय चिन्तन में ऐसी शिक्षा अपूर्ण है – जो मात्र भौतिक साधनों की प्राप्ति तक सीमित रहती है। शिक्षा की सम्पूर्णता शिक्षार्थी के बौद्धिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास व विस्तार में निहित है। किसी भी व्यक्ति के सम्पूर्ण मानवीय विकास के लिए, प्रकृति प्रदत्त गुण और मनुष्य का पारिवारिक व सामाजिक परिवेश तो जिम्मेदार होता ही है, परन्तु इसमें शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा में पूर्ण रूप से प्रकृति के सान्निध्य में रहते हुए विद्यार्थी के समग्र व्यक्तित्व विकास हेतु ज्ञान प्रदान करने की परम्परा थी। धर्म आधारित शिक्षा में भी मनुष्य के प्रकृति से जुड़ाव को महत्त्व देते हुए परम्पराओं का निर्वहन किया जाता था। सूर्य, वायु, जल, भूमि, वनस्पतियों की देवता तुल्य मान्यता थी। इनका पूजन करके अपने चारों ओर स्थित प्रकृति के ही संरक्षण की कामना की जाती थी।

प्राचीन काल में गुरुकुलों में पूर्ण रूप से विद्यार्थी के संस्कार निर्माण व जीवन को प्रकाशमान करने के उद्देश्य से ही शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा ऐसे विद्यार्थियों का निर्माण करती थी, जो समाज में आदर्श स्थापित करें। ये शिक्षार्थी आगे चलकर स्वार्थ रहित मूल्यों का प्रसार करते थे। इस काल में मुख्य रूप से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी, लेकिन शिक्षा का अपना महत्त्व था। कृषि भी अत्यन्त उन्नत और विकसित थी। साथ ही पशुपालन मुख्य रूप से गौ-पालन आय का मुख्य स्रोत था। सभी आत्मनिर्भर थे और किसी भी प्रकार के उद्योग करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी, व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी। अत: आजीविका हेतु किसी भी प्रकार से विद्यार्थी शिक्षा पर निर्भर नहीं थे।

देश की स्वतंत्रता तथा विदेशी आक्रांताओं से संघर्ष के दौरान भारत की मौलिक शिक्षा का व्यापक प्राचीन दृष्टिकोण समाप्त होता गया। अंग्रेजी शासनकाल के समय तथा आजादी के पश्चात् कितने ही शिक्षा आयोगों का गठन होता गया, परन्तु शिक्षा को हम आदर्श के अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँचा सके है।

प्राथमिक शिक्षा, जो जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था में बालक में स्थापित किये गये आदर्श और जीवन मूल्य ही उसके भावी जीवन में विकसित और प्रस्फुटित होते हैं। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा को उपेक्षित भाव से देखा गया। शिक्षा के सरकारीकरण-निजीकरण कर दिये जाने से 70 वर्षों बाद मैकाले द्वारा प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के दुष्परिणाम नजर आने लगे हैं। पाश्चात्य शिक्षा के अन्धानुकरण से जीवन मूल्यों के क्षरण ने सम्पूर्ण

भारतीय समाज को प्रभावित किया है। भावी युवा पीढ़ी की सुदृढ़ नींव को कमजोर कर दिया। आधुनिकता के नाम पर प्रचलित इस शिक्षा से मनुष्य न केवल प्रकृति से दूर होता गया वरन् प्रकृति का अनवरत शोषण भी करने लगा। औद्योगीकीकरण के कारण सामाजिक व्यवस्था अर्थ प्रधान होने लगी और शिक्षा का समाज में स्थान गौण होता गया। प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ते वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा पूर्ण रूप से रोजगारोन्मुखी बन गई।

वर्तमान में नई शिक्षा नीति पर विचार करते समय हमें भारतीय समाज की आवश्यकता के अनुरूप प्राचीन मौलिक शिक्षा पद्धति को अपनाते हुए आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण व्यवस्था और पाठ्यक्रम निर्धारित करने होंगे। संक्रमण काल की इस अवस्था में शिक्षा को पूर्ण रूप से प्राथमिकता प्रदान करते हुए उसमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए कई बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है:-

- वर्तमान परिस्थिति में ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है, जहाँ भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धा में पिछड़े बिना शिक्षा के प्राचीन शाश्वत मूल्यों व सिद्धान्तों को आत्मसात कर सके।

- सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था, नवीनतम प्रणाली में प्राचीन आदर्शों को खोजती नजर आती है। ऐसे समय में नई शिक्षा नीति का उद्देश्यात्मक निर्धारण, भावी पीढ़ी के व्यक्तित्व निर्माण तथा सुखद भविष्य हेतु निर्णायक मोड़ साबित होगा। शिक्षा में आधुनिक व प्राचीन के बीच संतुलन से विद्यार्थी के आर्थिक एवं आत्मिक दोनों उत्थान का उद्देश्य पूर्ण हो सकेगा।

- पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित शिक्षा को मात्र रोजगार पाने के लक्ष्य से जोड़ना, विद्यार्थी में रचनात्मकता तथा सृजनशीलता को अवरुद्ध कर देता है।

- वंशानुगत पारिवारिक व्यवसाय व उद्योग सब समाप्त प्राय: हो रहे हैं। सामान्य शिक्षा में रुचि एवं क्षमता के अनुसार अनिवार्य रूप से तकनीकी, व्यावसायिक, प्रबन्धन तथा विभिन्न कौशल उद्योगों संबंधी लघु उपक्रम प्रशिक्षण सम्मिलित किये जाए। तभी पुन: प्राचीन स्वावलम्बन और स्वरोजगार समकालीन शिक्षा में प्रासंगिक हो सकेंगे।

- स्वत: अनुभवों तथा प्रयोगों द्वारा सीखने की प्रक्रिया नि:स्वार्थ रूप से विद्यार्थी को सामाजिक आवश्यकता हेतु सोचने व समाज के लिए कुछ करने को प्रेरित करती है।

- परीक्षा में सीमित प्रश्नों के उत्तर लिखने की क्षमता से कहीं अधिक सार्थक वह शिक्षा पद्धति है, जिसमें विद्यार्थी शिक्षा को न केवल अपने जीवन में आत्मसात करें, अपितु उसे समाजोपयोगी भी बनाये।

- आधुनिक शिक्षा केवल दृश्य साधनों पर आधारित होने के कारण अत्यन्त अल्पकालिक होती है, जबकि प्राचीन श्रवण, मनन व कण्ठस्थ करने की प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थी सम्पूर्ण जीवनकाल के लिए शिक्षा ग्रहण कर लेते थे। यह विधि शिक्षा में सर्वकालिक रही है।

- भारतीय शिक्षण पद्धति पूर्ण रूप से पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पर आधारित रही है। भारतीय शिक्षा मूल्य 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की संकल्पना सम्पूर्ण समाज और विश्व के हित पर आधारित है।

- पाश्चात्य संस्कृति पर आधारित शिक्षा, व्यक्ति आधारित है। इसका प्रभाव मात्र वेशभूषा और खानपान पर ही नहीं, अपितु शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों, भाषा व पढ़ने-पढ़ाने की शैली में भी दृष्टिगत होता है। भावना शून्य पश्चिम आधारित शिक्षा प्रणाली महज जानकारी प्राप्त करने तक सीमित है। यह ज्ञान विज्ञान के विशाल कोष को विद्यार्थी द्वारा परखने तथा जीवन में उतारने व अन्वेषण करने के अवसर प्रदान नहीं करती।

- प्राचीन शिक्षण पद्धति में सभी वर्ग के बालक-बालिकायें शिक्षा प्राप्त करते थे, किसी प्रकार का शुल्क नहीं था। मात्र समावर्तन के समय गुरु दक्षिणा देने की प्रथा थी।

- समकालीन परिस्थितियों में धन की उपलब्धता या आरक्षण के स्थान पर पूर्ण रूप से योग्यता ही शिक्षा प्राप्ति का आधार बने अन्यथा विकृत आधुनिक शिक्षा नीति में बढ़ती सामाजिक असमानताओं और विषमताओं के कारण भारत में असाधारण प्रतिभा धीरे-धीरे विलुप्त हो जायेगी।

- निजीकरण द्वारा संसाधनों की प्रचुरता तथा शिक्षण संस्थाओं की अधिकाधिक संख्या प्रतिस्पर्धा तो बढ़ाती है, किन्तु शिक्षा के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न नहीं करती।

- शिक्षा नीति में लक्ष्यों का स्पष्ट निर्धारण तथा शिक्षण संस्थानों की मान्यता के लिए शर्तों की कठोर अनुपालना ही शिक्षा के बढ़ते अवमूल्यन को रोक सकेगी।

- लम्बे समय से उपेक्षित रहे शोध के क्षेत्र में बौद्धिक एवं सामाजिक लब्धता की सोच पुन: प्राचीन भारतीय शोध व्यवस्था को समुन्नत व उत्कृष्ट बना सकेगा।

- आज भी विदेशों में भारतीय विद्यार्थियों की असाधारण शैक्षणिक प्रतिभाओं को देखते हुए वेदों, उपनिषदों एवं भारतीय शिक्षण पद्धति पर शोध किये जा रहे हैं।

भारत की मौलिक शिक्षा नीति में बौद्धिक विकास के साथ मानवता, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासित जीवन, आत्मविश्वास जैसे गुण स्वत: निहित थे। इन्हें पुन: नवीन शिक्षा नीति में सम्मिलित किया जा सकता है। ऋषियों-मनीषियों के अनुभूत सिद्धान्तों से समृद्ध भारतीय संस्कृति को आधुनिक शिक्षा में समाहित करने का प्रयास करें तो वर्तमान शिक्षा नीति पूरे संसार को भारत की अद्भुत देन होगी, जो मानवता और सहअस्तित्व को सम्पूर्ण जगत् में पुनर्जीवित कर सकेगी। ❑

(व्याख्याता (रसायन शास्त्र), राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

नई शिक्षा नीति - आवश्यकता, संकल्पना एवं उपादेयता

वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था न भारतीय है, न इसमें शिक्षा के तत्त्व हैं और न व्यवस्था या पद्धति है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी राष्ट्र के मूलभूत दर्शन पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। वर्तमान भारतीय शिक्षा का परीक्षा केन्द्रित होना इसकी सर्वव्यापकता और सुलभता में बाधा है। कौशल विहीन शिक्षा किताबी कवायद बनकर रह जाती है। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को सर्वोपरि रखा जाना चाहिए। सब तक शिक्षा पहुँचाने हेतु कक्षाओं को ज्ञानोपयोगी, संवादपरक, और जीवंत बनाने की आवश्यकता है। विद्यालय में गरीब और अमीर की मानसिकता को बढ़ावा देने वाले शिक्षा प्रबन्धन के बजाय, सभी विद्यार्थियों को देश के समान नागरिक का आभास होने देने के लिए सहज सुविधाजनक, स्वाभाविक वातावरण दिए जाने के लिए राष्ट्र व्यापी कुशल शिक्षा प्रबन्धन की आवश्यकता है।

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

भारत विविध संस्कृतियों वाला समाज है, जो अनेक प्रादेशिक तथा स्थानीय संस्कृतियों से मिलकर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली, सामाजिक सम्बन्धों की समझ एक दूसरे से बिल्कुल अलग है। सभी समुदायों को सह-अस्तित्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है। हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय अस्मिता को सुदृढ़ करने के लिए शिक्षा नीति ऐसी होनी चाहिए कि वह युवा पीढ़ी को इसके लिए सक्षम बना सके जिससे कि वह नयी प्राथमिकताओं तथा बदलते सामाजिक संदर्भ में उभरते दृष्टिकोणों को समझ सकें व उनके आधार पर यह समझ सके कि हमारे देश में विविधता का अस्तित्व दरअसल हमारे यहाँ की उस विशिष्ट चेतना का फल है, जिसे फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर दिया। इस भूमि की सांस्कृतिक विविधता को हमारी विशिष्टता की तरह संजोए रखना चाहिए। इसे केवल सहिष्णुता का परिणाम नहीं समझा जाना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पृष्ठ संख्या 8-9, शिक्षा के बुनियादी ढाँचे में समय की आवश्यकता और अन्य देशों के स्पर्द्धा में शिक्षा व्यवस्था, नीति, प्रबन्धन पर समय-समय पर गठित आयोगों ने शिक्षा के गिरते स्तर का उन्नत करने हेतु अभिशंषायें की थी। महात्मा गाँधी और डॉ. जाकिर हुसैन ने शिक्षाविदों के साथ मिलकर 1937 में नई तालीम-बुनियादी शिक्षा का प्रारूप बनाया था, जिसे 1947 में लागू किया गया। 1948 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने धार्मिक और नैतिक शिक्षा, 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग (डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर) 1959 में श्री प्रकाश कमेटी सभी ने धार्मिक, नैतिक, मूल्य परक शिक्षा पर बल दिया। 1964-66 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी आयोग ने शिक्षा सुधार हेतु राष्ट्रीय एकता, धर्म निरपेक्षता, प्रजातंत्र, समाजवाद, शिक्षकों के अधिकार, सेवाशर्तों, पाठ्यक्रम जैसे सभी पक्षों पर अभिमत दिया। 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद ने पाठ्यक्रमों की रचना पर बल दिया। आगे चलकर 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में पाठ्यक्रम और पाठ्येत्तर क्रियाओं, नैतिक शिक्षा पर बल दिया। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा कर पाठ्यक्रम परिवर्तित करके सामाजिक व नैतिक मूल्यों की शिक्षा के द्वारा 21वीं सदी को बेहतर बनाने की आवश्यकता बताई। सन् 2000 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा द्वारा एन.सी.ई.आर.टी. ने मानक निर्धारित करते हुए पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, मूल्यांकन, प्रबन्धन विषयों को समाहित करते हुए दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं को देश की आवश्यकतानुसार शिक्षण में स्थान दिये जाने का आग्रह किया।

2004 में यशपाल कमेटी, 2005 में ज्ञान आयोग तथा 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम संसद में पारित हुआ। इन आयोगों द्वारा समकालीन शिक्षा व्यवस्था, सुधारों की आवश्यकता, शिक्षक के कर्त्तव्य, राज्यों को निर्देश का उल्लेख हुआ है। परन्तु, वास्तविकता यह रही कि स्वतंत्र भारत में इन सभी आयोगों के गठन और उनकी अभिशंषाओं को केन्द्र और राज्यों ने अपनी सुविधानुसार अमली जामा पहनाने का मात्र प्रयास किया, सफलता दूर रही। यही कारण है कि आज भी शैक्षिक स्तर में गिरावट बनी हुई है। इसलिए कहा जाता है कि वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था न भारतीय है, न इसमें शिक्षा के तत्त्व हैं और न व्यवस्था या पद्धति है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी राष्ट्र के मूलभूत दर्शन पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। वर्तमान भारतीय शिक्षा का परीक्षा केन्द्रित होना इसकी सर्वव्यापकता और सुलभता में बाधा है। कौशल विहीन शिक्षा किताबी कवायद बनकर रह जाती है। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को सर्वोपरि रखा जाना चाहिए। सब तक शिक्षा पहुँचाने हेतु कक्षाओं को ज्ञानोपयोगी, संवादपरक, और जीवंत बनाने की आवश्यकता है। विद्यालय में गरीब और अमीर की मानसिकता को बढ़ावा देने वाले शिक्षा प्रबन्धन के बजाय, सभी विद्यार्थियों को देश के समान नागरिक का आभास होने देने के लिए सहज

सुविधाजनक, स्वाभाविक वातावरण दिए जाने के लिए राष्ट्रव्यापी कुशल शिक्षा प्रबन्धन की आवश्यकता है। महात्मा गाँधी शिक्षा को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक प्रगति की आवश्यकता के रूप में चित्रित करते थे। वे चरित्र निर्माण की शिक्षा को, शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। गाँधीजी नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा, स्वावलंबन की शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षण, अहिंसा भाव की शिक्षा, नागरिक जीवन के आदर्शों की शिक्षा, सहकारिता की शिक्षा, स्त्री शिक्षा, प्रकृतिवाद की शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षा को शिक्षा नीति में सम्मिलित करना आवश्यक मानते थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि 'देश को भारत केन्द्रित, चरित्र निर्मात्री, मानव निर्मात्री तथा राष्ट्र जीवन दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है, जो अगली पीढ़ी को स्वावलम्बी, चरित्रवान, राष्ट्रभक्त, जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित करे। उन्हें आत्म केन्द्रित के स्थान पर समाजोपयोगी, राष्ट्रोपयोगी, सुनागरिक बनाए, ऐसी शिक्षा दिये जाने की आवश्यकता है।'

शिक्षाविदों की नई शिक्षा की संकल्पना

महर्षि अरविन्द- शिक्षा के द्वारा आत्म जागरण, आत्मा के दिव्यत्व का प्रकाशन, आध्यात्मिकता का रूपान्तरण एवं बालक के स्व का नैसर्गिक विकास चाहते हैं। उनका मानना है कि बालक को अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित होने का पूरा अवसर मिलना चाहिए। बालक स्वप्रयत्न, स्वानुभव, स्वक्रिया से सीखे तथा उसकी अभिव्यक्ति के विविध क्रियाकलाप, खेलकूद, व्यायाम, योग, चित्रकला, चार्ट, पोस्टर, संगीत, नृत्य, बागवानी जैसी क्रियाओं से शिक्षा ग्रहण करे। प्रेरणाप्रद उपदेश, तर्क, प्रवचन, भाषण कला विधायें उसकी सहायक होंगी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर - शिक्षा से मन को उन्नत, विशाल बनाकर, सामाजिक संवेदना निर्माण करना चाहते थे।

विनोवा भावे ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'जब तक शिक्षा का मूल उद्देश्य चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण करना नहीं होगा, तब तक हमारा समाज वर्तमान सोचनीय स्थिति से निजात नहीं पा सकेगा।' विनोबा जी का चिन्तन था कि

'आनो भद्राः कृतवो सन्तु विश्वतः।' अर्थात् दुनिया भर से मंगल विचार हमारे पास आएँ, हम उन सब विचारों का स्वागत करते हैं। वर्तमान शिक्षा पर प्रहार करते हुए उन्होंने कहा कि- 'मैं आज की शिक्षा से बेहद असन्तुष्ट हूँ। आज जगह-जगह पाठ्शालाएँ खुल रही हैं मगर मुझे ये सब प्राणहीन दिखाई दे रही हैं। इन पाठशालाओं में थोड़ा सा अक्षर ज्ञान मिलता है, पर जीवनोपयोगी ज्ञान नहीं मिलता।' आज के विद्यार्थी-विद्यार्थी न होकर परीक्षार्थी हो गए हैं। जबकि शिक्षा का उद्देश्य बालक के वैयक्तिक विकास, सामाजिक विकास, आर्थिक स्वावलम्बन, प्राकृतिक विकास तथा आध्यात्मिक विकास होना चाहिए। वे कहते हैं कि शिक्षा की एक बड़ी भूमिका यह भी है कि वह अपनी जाति, धर्म, संस्कृति तथा इतिहास को अक्षुण्ण बनाये, जिससे राष्ट्र का गौरवशाली अतीत भावी पीढ़ी के समक्ष द्योतित हो सके और युवा पीढ़ी अपने अतीत से कटकर न रह जाये।

महात्मा गाँधी ने कहा कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह आदि गुणों का विकास शिक्षा के माध्यम से होना चाहिए।

लोकमान्य जयप्रकाश नारायण के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो सामाजिक आवश्यकता के अनुकूल हो तथा जीवनोपयोगी के साथ ही लोगों को आत्मनिर्भर बनाए। शिक्षा की पाठ्यचर्या को समाज की आवश्यकता के अनुरूप निर्मित करने पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि विभिन्न समाजों की आवश्यकताएं अलग-अलग होंगी, तो उनके लिए पाठ्यचर्या भी एक समान नहीं होनी चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द- सच्ची शिक्षा वह है जो आत्मनिर्भर, दूसरों के लिए सहयोग हेतु तत्पर और जीवन के उद्देश्यों के प्रति सचेत बनाये, सनातन प्रणाली का अवलम्बन करे तथा मनुष्य को अपने पैरों पर खड़े होने का गुण सिखाये। वर्तमान शिक्षा में बाह्य परिवर्तन हो रहा है। परन्तु, नई-नई कल्पना शक्ति के अभाव में मात्र लोगों को धन कमाने का उपाय उपलब्ध नहीं हो रहा है। इस दृष्टि से दी जा रही शिक्षा अपूर्ण है। उनके अनुसार 'उस पूर्णता की अभिव्यक्ति को शिक्षा कहते हैं जो मानव प्रकृति के अज्ञान-आवरण को दूर करके उसकी पूर्णता के विकास में सहायक हो- Education is the manifestation of the perfection already in man. पंचमुखी शिक्षा शारीरिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, मानसिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा इन पँच शिक्षा माध्यमों से अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष का विकास किया जा सकता है। ये व्यक्तित्व विकास के पाँच चरण भी कहे जा सकते हैं, जिन्हें शिक्षा में अनिवार्य रूप से ग्रहण करना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के नौ मूलभूत सिद्धान्त बताये हैं- 1. ज्ञान व्यक्ति के भीतर होता है 2. आत्म शिक्षा 3. बालक की आवश्यकतानुसार शिक्षा 4. मन की एकाग्रता 5. एकाग्रता के लिए ब्रह्मचर्य 6. सबके लिए शिक्षा 7. राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली हो 8. नारी शिक्षा 9. धार्मिक शिक्षा। उन्होंने कहा कि इन पर आधारित पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए, जो सर्वांगीण विकास में सहायक होगा। शिक्षा के माध्यम से उक्त तत्त्वों का पोषण करने से समृद्धि, सुरक्षा, श्रेष्ठता, गौरव और उत्कृष्टता प्राप्त होगी। उक्त तत्त्व उन्नत हो इसके लिए समग्र, सर्व व्यापी, सर्वग्राही, राष्ट्र के उत्थान में सहायक होकर समाज की बौद्धिक क्षमता एवं संकल्प शक्ति को प्रेरित करने हेतु निर्देशित राष्ट्रीय शिक्षा नीति निर्धारित की जानी चाहिए। ❑

(रा.कोषाध्यक्ष, अ.भा.रा.शै.महासंघ)

मोदी सरकार ने शिक्षा की गुणवत्ता और उसे रोजगारपरक बनाने पर जोर दिया है। देखना होगा कि इस दिशा में यह सरकार कितनी मजबूती से आगे बढ़ पाती है। आज शिक्षा समवर्ती सूची में है किन्तु शिक्षा के मामले में राज्यों को पूरी आजादी है। परिणाम यह हो रहा है कि एक राज्य की शिक्षा नीति दूसरे राज्य से मेल नहीं खाती। यही नहीं शिक्षकों की भर्ती और उनके वेतनमानों में विसंगतियों के रहते केन्द्र सरकार की नई शिक्षा नीति में बदलाव की संकल्पना कैसे मूर्तरूप ले पायेगी। यह सवाल फिलहाल अनुत्तरित है। दूसरी बात जो और अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि राज्य सरकारें अपनी सुविधा से शिक्षा में बदलाव करना चाहती है जो सही नही है। केन्द्र सरकार का चूंकि इस पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए अभी तक देश की शिक्षा में न तो हम एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम तय कर पाये और न ही भाषा नीति पर कोई निर्णय हो सका।

शिक्षा को राजनीति से अलग रखें

❑ बजरंगी सिंह

इन दिनों एक बार पुन: 30 वर्ष बाद नई शिक्षा नीति पर चर्चा शुरू है। इसका हमें स्वागत करना चाहिए क्योंकि शिक्षा नीतियाँ सतत् पुनरावलोकन चाहती हैं। किन्तु यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि शिक्षा को राजनीति से छुटकारा मिलना जरूरी है। क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जिसके सहारे भावी पीढ़ी का हम चरित्र निर्माण करते हैं। इसलिए शिक्षा का समाज हित की पोषक होनी चाहिए।

भारत की वर्तमान शिक्षा बौद्धिक सम्पदा को न बढ़ा रही है और न ही आध्यात्मिक श्रेष्ठता को स्थापित कर पा रही है। वह शिक्षा बेकार है जो मानवीय मूल्यों से व्यक्ति को समृद्ध न कर सके। 1990 में भारत शिक्षा पर सकल उत्पाद का 4 प्रतिशत खर्च करता था। वह घट कर 3.5 प्रतिशत तक पहुँच गया है। मोदी सरकार के केन्द्र में आने के बाद एक बार पुन: शिक्षा मद पर खर्च का प्रतिशत बढ़ाए जाने को चर्चा शुरू हुई है। देखना है कि क्या मोदी सरकार सकल उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने जैसा निर्णय निकट भविष्य में ले पाती है?

दुर्भाग्य रहा है कि आजादी के बाद जिस शिक्षा को प्राथमिकता के प्रथम पायदान पर रखा जाना चाहिए था उसे हम निचले पायदान पर ही रखे रह गये। परिणाम रहा कि शिक्षा सेठ और व्यावसायिक घरानों के सहारे चलने लगी। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी एक उच्च प्रतिशत पर पहुँच चुकी है। हम इनके योगदान से इन्कार नहीं कर सकते किन्तु क्या केन्द्र सरकार शिक्षा को इनके चंगुल से बाहर लाने का कोई प्रयास करने जा रही है। शायद नहीं! क्योंकि सरकार की नीति ही पीपीपी मॉडल को विकसित करना है। केन्द्र सरकार की मजबूरी को हम समझ सकते हैं किन्तु इसके बावजूद यदि केन्द्र और राज्य सरकारों का मजबूत नियंत्रण शिक्षा पर नहीं रह जाता है तो शिक्षा में अराजकता और व्यावसायीकरण को नहीं रोका जा सकेगा। यदि हम थोड़ा पीछे मुड़कर 1992 के सुझावों को देखें तो साफ हो जाता है कि सरकार एक कदम भी उन सुझावों के अनुपालन की दिशा में आगे नहीं बढ़ पायी है। दूसरी ओर यदि हम 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर गौर करते हैं तो पता चलता है कि सब कुछ कागज तक ही सीमित रह गया। उस समय कहा गया था कि शिक्षा में एक अद्वितीय

निवेश किया जाना जरूरी है किन्तु हम ऐसा नहीं कर पाये। यही नहीं महिलाओं को भी संकल्प के अनुसार शिक्षा में समानता नहीं दिला पाए हैं। आज भी महिलाओं का एक बहुत बड़ा हिस्सा शिक्षा की मुख्य धारा से अलग है। गरीब और दलितों को भी शिक्षा के क्षेत्र में बराबरी नहीं दे पाये हैं। ये सारी चुनौतियाँ मोदी सरकार के सामने हैं। वह कहाँ तक इसे हल करने की दिशा में आगे बढ़ पाते हैं। इसका फिलहाल हमें इन्तजार करना पड़ेगा।

पिछली मनमोहन सिंह की सरकार में पीपीपी (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप) के तहत 'मॉडल स्कूलों' को खोले जाने और 2015-16 में इन स्कूलों में पढ़ाई शुरू कर देने का वादा किया गया था। यह भी कहा गया था कि इन स्कूलों में 40 प्रतिशत स्थानों पर आर्थिक कमजोर वर्ग के बच्चों को प्रवेश मिलेगा। केन्द्र सरकार इनके खर्चों को खुद वहन करेगी। 3500 स्कूल सार्वजनिक व 2500 निजी भागीदारी के तहत खुलने थे। कई राज्यों में खुले भी है किन्तु केन्द्र सरकार द्वारा निर्माण कार्य के बाद आगे सहयोग देने से मना कर देने से योजना धराशाही हो गई। राज्य सरकारें बजट का रोना रो रही है। ऐसे में शिक्षा का पूर्ण विकास कैसे सम्भव है।

आजादी के इतने लम्बे अर्से बाद हम शिक्षाधिकार कानून बना कर जरूर एक कदम आगे बढ़े किन्तु इस कानून की अनुपालना की जो स्थिति सामने आयी। उससे भारी निराशा हुई है। इस कानून को लागू हुए लगभग 5 वर्ष गुजर चुके फिर भी देश में बिना मान्यता प्राप्त स्कूलों की बाढ़ खत्म होने का नाम नहीं ले रही हैं। जहाँ तक निर्धारित मानक पूरा करने का सवाल है तो इस दिशा में राज्य सरकारों ने कुछ नहीं किया अगर कल कार्यवाही की गई तो हजारों स्कूलों में ताला लग जायेगा। इन स्कूलों में पढने वाले छात्र-छात्राओं के भविष्य के साथ अब तक जो खिलवाड़ हुआ उसकी भरपाई कौन करेगा? यह सवाल अभी भी अनुत्तरित है।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में अधिक से अधिक 7,40,000 औपचारिक स्कूल हैं। 36 लाख शिक्षक नियमित रूप से काम कर रहे हैं। शिक्षा की गुणवत्ता कायम करना सरकार की जिम्मेदारी है। यह तभी संभव है जब शिक्षकों की कमी न हो। आज यदि हम देखें तो मालूम होता है कि स्कूलों में सात लाख पद शिक्षकों के खाली हैं। ऐसे में गुणवत्ता कैसे कायम होगी? यही नहीं लगभग इतने ही पदों पर अप्रशिक्षित अध्यापक काम कर रहे हैं, जिन्हें मानदेय नाम मात्र का ही मिलता है। इन्हीं के ऊपर स्कूल चलाने की जिम्मेदारी है। जो व्यक्ति नियमित आय का साधन नहीं जुटा पाता, वह अपना कार्य पूरी क्षमता के साथ कैसे कर सकता है। ऐसे में उसका उद्वेलित होना स्वाभाविक है।

मोदी सरकार ने शिक्षा की गुणवत्ता और उसे रोजगारपरक बनाने पर जोर दिया है। देखना होगा कि इस दिशा में यह सरकार कितनी मजबूती से आगे बढ़ पाती है। आज शिक्षा समवर्ती सूची में है किन्तु शिक्षा के मामले में राज्यों को पूरी आजादी है। परिणाम यह हो रहा है कि एक राज्य की शिक्षा नीति दूसरे राज्य से मेल नहीं खाती। यही नहीं शिक्षकों की भर्ती और उनके वेतनमानों में विसंगतियों के रहते केन्द्र सरकार की नई शिक्षा नीति में बदलाव की संकल्पना कैसे मूर्तरूप ले पायेगी। यह सवाल फिलहाल अनुत्तरित है। दूसरी बात जो और अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि राज्य सरकारें अपनी सुविधा से शिक्षा में बदलाव करना चाहती है जो सही नही है। केन्द्र सरकार का चूंकि इस पर कोई नियंत्रण नहीं है इसलिए अभी तक देश की शिक्षा में न तो हम एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम तय कर पाये हैं और न ही भाषा नीति पर कोई निर्णय हो सका है। शिक्षकों के वेतनमान और भर्ती प्रक्रिया में भी भारी असमानता बनी हुई है। ऐसे में शिक्षा को हम राजनीति से कैसे अलग कर पायेंगे। इसलिए जरूरी हो गया है कि देश में एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम और एक वेतनमान निर्धारित हो और शिक्षकों की भर्ती में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोका जाय। तभी अच्छे और योग्य लोग शिक्षक बनना चाहेंगे। उदाहरण के लिए यदि उत्तर प्रदेश को लिया जाय तो यहाँ शिक्षकों की भर्ती के लिए बने संस्थानों में राजनीतिक लोग बैठा देने का ही परिणाम है कि पिछले 4-5 वर्षों से शिक्षकों की नियुक्तियाँ ठप्प हैं। जो हुई हैं उस पर हाई कोर्ट में विवाद चल रहा है। इतनी परेशानियों और शोषण के बाद जब कोई शिक्षक बनेगा तो वह शिक्षक की जिम्मेदारी कितनी ईमानदारी से पूरा कर पायेगा? ❑

(स्वतंत्र लेखक)

यदि कुछ सार्थक करना है तो सोचना होगा कि पूर्व के इतने प्रयासों के बाद भी शिक्षा में परिवर्तन क्यों नहीं आया है? शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन की दृष्टि से आज भी हम एक चौराहे पर खड़े हैं। इतने वर्षों में भी तय नहीं कर पाए की जाना किधर है? अभी स्पष्ट नहीं है कि हम अमेरिका की नकल को विकास कहते है या महात्मा गाँधी के ग्राम स्वावलम्बन को। युवकों को रोजगार देना आज भी हमारी प्रमुख समस्या है। आर्थिक असन्तुलन खतरनाक स्तर तक बढ़ता जा रहा है। सबका साथ, सबका विकास व सबको न्याय देना है तो आयातित ज्ञान हमारा मार्ग दर्शन नहीं कर सकता।

नीति क्रियान्वयन पर ध्यान देना होगा

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

भारत में शिक्षा नीति बनाने की प्रथा का प्रारम्भ आचार्य चाणक्य से माना जा सकता है। आचार्य चाणक्य ने सर्वप्रथम शिक्षा का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रहित घोषित किया था। उस नीति के कारण ही घनानंद के शासन का अन्त हुआ तथा भारत एक संगठित राष्ट्र बन कर उभर सका। शिक्षा केन्द्रीकृत नहीं थी, शिक्षक अपने स्तर पर शिक्षा देते रहे थे। उस शिक्षा से तत्कालीन भारतीय समाज का कार्य अच्छी तरह चल रहा था। वह शिक्षा व्यवस्था इतनी प्रभावी थी कि अंग्रेजों की आँख की किरकिरी बन गई। 1835 में अंग्रेजों ने उस व्यवस्था को समाप्त कर मैकाले की शिक्षा व्यवस्था स्थापित की। भारतीय भाषाओं की उपेक्षा कर अंग्रेजी माध्यम से ऐसी शिक्षा दी जानी लगी जो राष्ट्रभक्तों के स्थान पर अंग्रेजी शासन के सहायक पैदा करे। देश में पहली बार शिक्षा का उद्देश्य नौकरी पाना हो गया। नौकरी के लालच में जनसामान्य मैकालयी शिक्षा को अपनाने लगा। देशी शिक्षा व्यवस्था की उपेक्षा होने लगी और वह लुप्त होने लगी।

राष्ट्रीय शिक्षा का जन्म

अंग्रेजों की चाल को भारतीय नेता समझने लगे थे। राजनारायण बसु (1826–1899) ने मातृभाषा में देशप्रेम की शिक्षा देना प्रारम्भ कर राष्ट्रीय शिक्षा की नींव रखी। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (1856–1920) ने अंग्रेजी शिक्षा के अनेक घटकों को अपनाया मगर वे यह समझ गए कि अंग्रेजी शिक्षा से भारत का युवा देश की संस्कृति से कटता जा रहा है। मैकालयी शिक्षा व्यवस्था के विकल्प के रूप में तिलक ने राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा प्रस्तुत की। तिलक चाहते थे कि शिक्षित होकर युवा आत्मनिर्भर हो। तिलक जानते थे आत्मनिर्भर होकर ही वह देशभक्त नागरिक बन सकता था। सतीशचन्द्र मुखर्जी, राजनारायण बसु के शिष्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानंद व अन्य अनेकों लोगों ने उस परम्परा को आगे बढ़ाने का पूरा प्रयास किया।

राष्ट्रीय भावना का प्रभाव विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले भारतीयों पर भी हुआ। साधन विहीनता की स्थिति के बावजूद उस अल्पकाल में जितने विश्व स्तरीय (नोबेल पुरस्कार हेतु नामित) वैज्ञानिक भारत में हुए वह उल्लेखनीय है। देश को एकमात्र विज्ञान नोबेल पुरस्कार, सी.वी.रमन (1930), भी राष्ट्रीय भावना के विकास का परिणाम था। देश के आकार को देखते हुए वे प्रयास बहुत छोटे थे। अंग्रेज सरकार भी विभिन्न आयोग, समितियाँ आदि बैठा कर शिक्षा में सुधार का निरन्तर नाटक करती रही मगर शिक्षा प्रणाली

के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

स्वतन्त्रता के बाद

देश के स्वतन्त्र होने के तुरन्त बाद माध्यमिक शिक्षा की कमियों को पहचानने तथा उन्हें दूर करने के उपाय सुझाने हेतु माध्मिक शिक्षा आयोग गठित किया गया। 1964 में देश की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था पर विचार करने हेतु कोठारी आयोग गठित किया गया। दोनों ही आयोगों ने बहुत अच्छे सुझाव दिए। 1968 में पहली बार शिक्षा नीति की घोषणा कर केन्द्र सरकार ने शिक्षा में सुधार का व्यापक प्रयास किया। 1970 के दशक के आते-आते देश की शिक्षा व्यवस्था को लेकर फिर असन्तोष उभरने लगा। 1976 में संविधान संशोधन कर शिक्षा को राज्य सूची से निकाल कर समवर्ती सूची में डाला गया। तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामंत्री पी.वी. नरसिंह्माराव की अध्यक्षता में एक समिति ने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की कमियों का पता कर शिक्षा की चुनौतियाँ नामक एक विस्तृत दस्तावेज देश के सामने रखा। शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करने के लिए 1986 में भारतीय संसद ने देश के लिए नई शिक्षा नीति स्वीकृत की। केन्द्र व राज्यों की भागीदारी में शिक्षा नीति को ठीक से लागू करने हेतु एक क्रियान्वयन योजना का दस्तावेज भी जारी किया गया। 1992 में कुछ संशोधन किए गए मगर उनका सामान्य शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्ध नहीं था।

केन्द्र की वर्तमान सरकार 29 वर्षों के बाद देश में एक बार फिर शिक्षा नीति बनाने जा रही है। सरकार ने देश-विदेश के विद्वानों, शिक्षाविदों, व्यापारियों एवं आम नागरिकों से 33 विभिन्न विषयों पर सुझाव आमंत्रित किए हैं। ग्राम पंचायत स्तर तक इन बिन्दुओं पर व्यापक चर्चा करा कर लिखित सुझाव प्राप्त करने के भी प्रयास किए गए है। अब इन्तजार सरकार द्वारा जारी की जाने वाली नई शिक्षा नीति का है।

भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। शिक्षा नीति में परिवर्तन संविधान के दायरे में ही किए जा सकते हैं। पूर्व में जो नीतियाँ बनी वे भी व्यापक विचार-विमर्श के बाद बनी थी अत: नई शिक्षा नीति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन की आशा करना बेमानी होगा। राजनैतिक दृष्टि से भी सरकार इस स्थिति में नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि पूर्व के इतने प्रयासों के बाद भी शिक्षा व्यवस्था के मैकालयी चरित्र में परिवर्तन नहीं आया है। शिक्षा व्यवस्था का विस्तार तो हुआ है मगर गुणवत्ता गिरती गई। देश विकास के पथ पर तेजी से आगे बढ़ रहा है ऐसे में देश की आम जनता को सही प्रकार से शिक्षित नहीं किया गया तो परिणाम घातक हो सकते हैं।

असफलता के कारण

यदि कुछ सार्थक करना है तो सोचना होगा कि पूर्व के इतने प्रयासों के बाद भी शिक्षा में परिवर्तन क्यों नहीं आया है? शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन की दृष्टि से आज भी हम एक चौराहे पर खड़े हैं। इतने वर्षों में भी तय नहीं कर पाए की जाना किधर है? अभी स्पष्ट नहीं है कि हम अमेरिका की नकल को विकास कहते हैं या महात्मा गाँधी के ग्राम स्वावलम्बन को। युवकों को रोजगार देना आज भी हमारी प्रमुख समस्या है। आर्थिक असन्तुलन खतरनाक स्तर तक बढ़ता जा रहा है। सबका साथ, सबका विकास व सबको न्याय देना है तो आयातित ज्ञान हमारा मार्ग दर्शन नहीं कर सकता। महात्मा गाँधी का ग्राम स्वावलम्बन, युगानुकूलता के साथ आज भी प्रासंगिक है।

असफलता का एक अन्य कारण शिक्षा नीति को क्रियान्वित करने वाली मशीनरी रही है। देश स्वतत्र होने के बाद हमने अंग्रेजों के प्रशासनिक ढ़ाँचे को जस का तस अपनाया। दिन गुजरने के साथ उस पर हमारी निर्भरता बढ़ती गई। यह मशीनरी शिक्षा प्रसार की इच्छुक नहीं थी। पैसे वालों के बच्चों के लिए अच्छे स्कूल थे जिनके माध्यम से वे उच्च पदों पर पहुँच सकते थे। नवोदय व आदर्श विद्यालय बना कर विषमता को प्रोत्साहित किया गया। आज शिक्षा क्षेत्र में विषमता कई गुणा बढ़ गई है। शिक्षा प्रशासन में विकेन्द्रीकरण के स्थान पर केन्द्रीकरण ही अधिक हुआ है। नए प्रयोग की संभावनाएं शून्य हो गई हैं। सब कुछ यांत्रिक रूप से चल रहा है। अखिल भारतीय शिक्षा सेवा की कल्पना की गई मगर हकीकत में कुछ नहीं हुआ। राज्य स्तर पर शिक्षा सलाहकार बोर्ड की सलाह हवा में उड़ा दी गई। वेतन तो बढ़े मगर तन्त्र में उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न नहीं किया जा सका, नौकरशाही का ही विकास हुआ है।

सबसे बड़ी कमी तो धन की रही। सरकार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए वादे कभी पूरे नहीं कर पायी। कुल सकल उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर अभी तक कभी भी खर्च नहीं हुआ। केन्द्र सरकार ने अभियान चला कर कुछ अवधि के लिए अधिक सहयोग किया मगर उसके बाद वह आगे नहीं बढ़ पाया। यदि हम पर्याप्त पैसा खर्च करने की स्थिति में नहीं थे तो हमें शिक्षा व्यवस्था में देशानुकूल परिवर्तन करने चाहिए।

भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के वादे वादे ही बने रहे। आज विकट स्थिति है। उच्च शिक्षा भी भारतीय भाषा में सुलभ कराने की बात 1986 की शिक्षा नीति में भी की गई पर व्यवहार में नहीं आई। न्यूनतम अधिगम स्तर अवधारणा को मध्य मार्ग में ही छोड़ दिया गया। भारतीय भाषा में शिक्षा ग्रहण करना आज दरिद्रता का पर्याय बन चुका है। इस आलेख का मुख्य स्वर यही है कि शिक्षा नीति बनाने से भी अह्म मुद्दा उसके क्रियान्वयन का है। शिक्षा से राजनैतिक लाभ पाने का प्रयास नहीं होना चाहिए। पूर्व के अनुभवों से सीखकर ही सही राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था विकसित कर पाएंगे। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

महिलाओं की साक्षरता दर काफी कम है। उच्च शिक्षा में वे काफी पीछे हैं। भले ही वे पढ़ने एवं मेरिट में लड़कों को काफी पीछे छोड़ रही हों। इनके अलग से अध्ययन के केन्द्र नाममात्र के हैं। इस विषमता को दूर करना है तो केन्द्र सरकार प्रत्येक राज्य में कम से कम एक और बड़े राज्यों में प्रारम्भिक दौर में दो महिला विश्वविद्यालय स्थापित करे। अलग से महिला महाविद्यालयों की स्थापना हो। जिसमें सभी संकाय (चिकित्सा, तकनीकी एवं कौशल विकास केन्द्र) खुलें। इसी तरह राज्य सरकारें भी अपने संसाधनों से राज्यों में अधिक से अधिक महिला विश्वविद्यालयों की स्थापना करें। परन्तु इतना भर कर देने से काम नहीं चलेगा। महिलाओं की शिक्षा एवं हॉस्टल का खर्च कुछ वर्ष तक सरकारें स्वयं वहन करें। वे संस्थान पिछड़े क्षेत्रों में विशेष रूप से खोले जाये।

नई शिक्षा नीति और महिला शिक्षा

❑ डॉ. जगदीश सिंह दीक्षित

वर्तमान में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा नई शिक्षा नीति–2015 का प्रारूप तैयार करने के सम्बन्ध में कुल 33 बिन्दुओं पर शिक्षकों, शिक्षाविदों एवं समाज के प्रत्येक वर्ग से सुझाव माँगे गए हैं। इन्हीं सुझावों के आधार पर एक विस्तृत रूपरेखा प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की तैयारी की जायेगी। इन 33 बिन्दुओं में से 20 बिन्दु उच्च शिक्षा से जुड़े हैं तो 13 बिन्दु प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा से जुड़े हुए हैं। यहाँ मैं उच्च शिक्षा से जुड़े कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर अपने विचार रख रहा हूँ।

कहने को तो सरकारी विश्वविद्यालय चाहे वह केन्द्र सरकार द्वारा संचालित है या फिर राज्य सरकारों द्वारा उन्हें स्वायत्तता प्राप्त है। परन्तु समय–समय पर केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा साथ ही लगातार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा के संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में हस्तक्षेप किया जाता है। तात्पर्य यह है कि विश्वविद्यालयों को पूरी स्वायत्तता होनी चाहिए। सरकारें या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग केवल निगरानी रखे कि कहीं वे सरकारी नीतियों का उल्लंघन तो नहीं कर रहे हैं। इस उच्च शिक्षा नीति के लिए जो कुछ बिन्दु हैं उसमें से पाँचवाँ बिन्दु है राज्य सार्वजनिक विश्वविद्यालय को बेहतर बनाना। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों को तो कुछ सीमा तक केन्द्र सरकार द्वारा उनकी बेहतरी के लिए पर्याप्त धन मुहैया हो जाता है। फिर भी ये विश्वविद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय मानक पर खरे नहीं उतरते हैं। यू.पी.ए. की पूर्ववर्ती केन्द्र सरकार और वर्तमान एन.डी.ए. सरकार ने भी बहुत सारे केन्द्रीय विश्वविद्यालय, एम्स, आई.आई.एम., आई.आई.टी. एवं ट्रिपल आई.टी. की स्वीकृति तो प्रदान कर दी, परन्तु इनमें से अधिकांश के भवन बनकर तैयार ही नहीं हुए हैं। कुछ राज्य सरकारों द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों एवं आई.आई.एम. को भी केन्द्र सरकार ने अपने

अधीन किया, परन्तु इन सभी की स्थिति में अभी तक कोई सुधार नहीं हुआ है। इसी तरह राज्य सरकारों द्वारा संचालित चाहे विश्वविद्यालय हों या मेडिकल कॉलेज या इंजीनियरिंग कॉलेज में सभी खस्ता हाल है। न तो इनके पास पर्याप्त भवन है और न अन्य संसाधन। इन सभी के विकास के लिए राज्य सरकारें नाममात्र को धन देती हैं। इन विश्वविद्यालयों एवं उच्च संस्थानों में चाहे वे इंजीनियरिंग कॉलेज हों या मेडिकल कॉलेज या फिर राजकीय/ अनुदानित महाविद्यालय इनमें शिक्षकों की भारी कमी है। राज्य सरकारों द्वारा संचालित विश्वविद्यालय या संस्थान अन्तर्राष्ट्रीय जो मानक है उनमें 200 की जो संख्या है उसमें कहीं नहीं ठहरते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि राज्य या केन्द्र द्वारा जितने भी विश्वविद्यालय या उच्च चिकित्सा, प्रबन्धन या तकनीकी शिक्षा के संस्थान हैं उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने के लिए जो कमियाँ गिनाई गई हैं उन्हें दूर करना होगा। प्राथमिकता देकर अधिक से अधिक धन मुहैया कराना होगा। ध्यान रहे कि विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता भी बरकरार रहे। साथ ही हमारी शिक्षा प्रणाली एवं पाठ्यक्रम भी भारतीय मूल्यों एवं आदर्शों से न भटके।

इसमें दसवाँ बिन्दु जेण्डर और सामाजिक अन्तरालों को पाटने का है। इस सम्बन्ध में मेरा मत है कि आज भी महिलाओं की साक्षरता दर काफी कम है। उच्च शिक्षा में वे काफी पीछे हैं। भले ही वे पढ़ने एवं मेरिट में लड़कों को काफी पीछे छोड़ रही हों। इनके अलग से अध्ययन के केन्द्र नाममात्र के हैं। इस विषमता को दूर करना है तो केन्द्र सरकार प्रत्येक राज्य में कम से कम एक और बड़े राज्यों में प्रारम्भिक दौर में दो महिला विश्वविद्यालय स्थापित करे। अलग से महिला महाविद्यालयों की स्थापना हो। जिसमें सभी संकाय (चिकित्सा, तकनीकी एवं कौशल विकास केन्द्र) खुलें। इसी तरह राज्य सरकारें भी अपने संसाधनों से राज्यों में अधिक से अधिक महिला विश्वविद्यालयों की स्थापना करें। परन्तु इतना भर कर देने से काम नहीं चलेगा। महिलाओं की शिक्षा एवं हास्टल का खर्च कुछ वर्ष तक सरकारें स्वयं वहन करें। वे संस्थान पिछड़े क्षेत्रों में विशेष रूप से खोले जाय।

ग्यारहवें बिन्दु पर उच्च शिक्षा को समाज से जोड़ना है। प्रत्येक विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय (सरकारी एवं प्राइवेट) ये सभी कम से कम एक किमी के परिक्षेत्र में स्थित गाँवों को गोद लेकर उनकी बेहतरी के लिए कार्य करें। समाज को भी ये प्रोत्साहित करें कि वे भी उच्च शिक्षा के विकास में अपना योगदान करें। ये सभी उच्च शिक्षा के संस्थान साक्षरता, स्वच्छता, वृक्षारोपण जैसे कार्यक्रम चलाकर युवाओं एवं समाज के प्रत्येक वर्ग में जोश एवं उमंग भरने का काम कर सकते हैं।

उन्नीसवाँ बिन्दु है अनुसंधान और नवाचार को बढ़ावा देना। इस सम्बन्ध में अपना विचार है कि जब से शोध हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जुलाई-2009 का नियमन आया है तब से छात्रों को पी.एच.डी. करना कठिन हो गया है। इसमें बदलाव करने की जरूरत है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों को शोध एवं नवाचार के लिए अधिक धन मुहैया कराना चाहिए। नवाचार के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय को कुछ न कुछ विषय आवंटित कर देना चाहिए। स्वायत्तशासी एवं कुछ बड़े महाविद्यालयों में भी एकेडेमिक स्टॉफ कालेज खोले जाने चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह विज्ञान का हो या कला का तकनीकी क्षेत्र हो या समाज विज्ञान का अधिक से अधिक शोध केन्द्र विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में खोले जाने चाहिए। इन शोध केन्द्रों एवं नवाचार केन्द्रों के द्वारा उच्च शिक्षा के लिए जो बारहवाँ बिन्दु है सर्वोत्तम अध्यापक तैयार करना इसकी भी पूर्ति हो सकती है। जिस प्रकार वर्ष में एक महीने प्रत्येक पुलिसकर्मी को एक माह के लिए प्रशिक्षण हेतु पुलिस लाइन जाना पड़ता है उसी प्रकार अवकाश के दिनों में प्रत्येक शिक्षक कम से कम 10 दिन के प्रशिक्षण हेतु इन नवाचार केन्द्रों पर जाय। सरकार इसका पूर्ण खर्च वहन करे।

पूरी उच्च शिक्षा के लिए विनियमन हेतु एक नियामक तंत्र हो जिसमें सामान्य शिक्षा के विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय, कृषि शिक्षा के विश्वविद्यालय और महाविद्यालय, तकनीकी शिक्षा, मेडिकल शिक्षा या फिर शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (एनसीटीई) सभी शामिल हो। इसमें सबके लिए अलग-अलग सेक्शन रखा जा सकता है। इस नीति का जो छठा बिन्दु कौशल विकास को उच्च शिक्षा में शामिल करने का है, इस संदर्भ में केन्द्र सरकार को पहले इसके क्षेत्र निर्धारित करने होंगे और सबके योग्य एवं तकनीकी विशेषज्ञों की राय से पाठ्यक्रम तैयार करने होंगे, फिर प्रत्येक विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय को एक या दो पाठ्यक्रम देकर कौशल विकास केन्द्र स्थापित करने होंगे। सरकार को यह भी करना होगा कि प्रशिक्षण प्राप्त छात्रों का प्लेसमेन्ट भी हो। उच्च शिक्षा में गुणवत्ता हेतु परीक्षा की सेमेस्टर प्रणाली को खत्म करना होगा। उच्च शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अधिक से अधिक विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय स्थापित करने होंगे तथा बड़े महाविद्यालयों को पूर्ण स्वायत्तशासी बनाना होगा। इन्हें डिग्री प्रदान करने तथा शिक्षकों की नियुक्ति करने का भी अधिकार मिलना चाहिए। लेकिन इसके लिए एक साफ-सुथरी पारदर्शी व्यवस्था बनानी होगी। ❑

(सेवानिवृत्त एसोसियेट प्रोफेसर)

Education System & Equal Opportunity

❑ Prof. A. K. Gupta

The herculean task has to be completed by inputs of various stakeholders in different forms. Government can provide at a distant place may be at outskirts of a metro or big city, on subsidized rate to help out the interested parties. Development of infrastructural facilities remain another challenge which may be met out in phased manner by providing essential assets e.g. Institutional requirements for educational buildings including hostels and other amenities. In such a case transportation again remains a challenging task to meet out the requirement.

Education commences with informal and then formal mode. Informal education is very important since it leaves unforgetable marks on one's memory. This is the part which requires no fee to be paid. Therefore it has real devotional feelings one is bound to have an impression. The other part which is informal, of course important but requires a certain amount of fee to be paid. This is where the student gets a sense of being served as a return of the fee paid.

The informal part is thus an initial step a student gets generally at home and where lies development of samskars. The samskars so developed are very important to form and shape one's personality in the later part of his/her life. The time devoted at this stage not only provides a student at the stage but also to inculcate in the next generation. Thus it provides a sustainable development of personalities in time to come and keep intact societal structure later with passage of time, one can observe.

Sense of responsibility is developed in that phase towards the family members and to the society as well. Emotions of responsibilities, sacrifice etc. result in a feeling to serve the society and therefore the nation is bound to develop. Nobody expects or paid for any of the services rendered. Therefore it does not form a part of the formal economic calculations.

But as in the worship of Goddess Laxmi ji it is reiterated that no work is successful without the contribution of money, so is the formal education system where everyone expects money to be paid for. In particular in private sector, education providers plan and execute so as to make economically viable.

We know that it is very difficult to provide education in every nook and corner and that too in every branch of study at every level by the Government, therefore it becomes essential or rather unavoidable to get support from private sector to serve the society at large and take part in development of the nation.

Study by National Sample Survey is very important that way. One has to be vigilant on the development trends so as to plan properly. Need of man power in different streams and at different levels is far more important. The professional education has to be planned in that manner. The resources required for formal education in terms of man power, infra structure and equipments are very vital.

The herculean task has to be completed by inputs of various stakeholders in different forms. Government can provide at a distant place may be at outskirts of a metro or big city, on subsidized rate to help out the interested parties. Development of infrastructural facilities remain another challenge which may be met out in phased manner by providing essential assets e.g. Institutional requirements for educational buildings including hostels and other amenities. In such a case transportation again remains a challenging task to meet out the requirement.

Man power requirement at different levels in different streams is a big challenge. Availability of qualified persons, that too at affordable salary structure, is herculean task to accomplish. There is always a debate on the remuneration given and the facilities provided

to the staff. Non Teaching staff is key factor in the setup, may it academic or extracurricular activities. Often the library, Computer and other facilities are talked about in every institution. Facilities e.g. Auditorium, Gym, Internet, Hostel, Mess and Canteen, Security etc are often discussed to adjudge the class of the institution.

This all discussion cannot be completed without the student part. It has become very important to attract students as per the intake capacity of the institution. It has been found that charm of getting admission in particular to Engineering and some other Disciplines has gone down for certain obvious reasons. Placement is considered to be an important aspect of any institution, Initial package and credibility of companies is another aspect students' parents are looking for even at the time of admission. Perhaps total expenditure and return are assessed by them.

Placements must be transparent with equal opportunity to everyone. Skill development remains a greater role to play. Such non organized sectors should be given due importance. A person with different background and conditions should get rightful opportunity to reach to the top in his/her career. Thus present education system is in need of Continuous Study schemes at different levels. Everybody should get such an opportunity at different levels. Part time study schemes where one can continue with study while serving any industry should be encouraged.

Interdisciplinary approach should be encouraged. A student should get a chance to excel his/her talent in later part in entirely different field depending upon his/her potential. A person should not find any difficulty while seeking gain of higher education to which community he/she belongs to of the financial strata or family background he/she belongs to.

It is felt that in today's world there are many aspects which should be looked in to more carefully e.g. Industry- Institute Interaction at different levels: In providing training to aspiring students and letting them have exposure to real challenges by way of providing basic amenities free of cost like lodging and boarding and if possible some incentive should be paid to them. Later if found satisfactory the Company may think of absorbing them on regular basis. It is not always possible for an educational institute to acquire latest and costly equipments so industries can come forward to rescue them and the same time become part of curriculum development. Thus a scheme launched by Indian National Academy of Engineering (INAE) and All India Council for Technical Education (AICTE) i.e. Distinguished Visiting Professorship (DVP) should be appreciated.

In the similar fashion other parts of the syllabus e.g. Tour, Seminar, and Project/ Thesis etc should be discussed and planned meticulously. This will certainly minimize the gap so widened for want of budget and creating an undesired gap between academia and industry. There are many other sectors where points of mutual benefits can be explored e.g. organising seminars, training programmes, R & D Programmes. Publication in another area which can be explored in this light. One more part which can be considered by the local authorities is participation in formal testing programmes as third party in the approachable infrastructure projects. This will enable extra money staff members can earn and the institution management can also get something in return.

The role of regulatory bodies should be to ensure uniformity of quality education in the country and at the same time to consider and provide amicable solution to the education system. Attempts should be made to minimize confrontations or confusions between various regulatory bodies. A trust may run different courses recognized by different regulatory bodies and in the process may like to skip otherwise stringent norms laid down to follow.

Attempts should be made to form a uniform team comprising experts from different fields without questening superiority of a person or a body. Norms should be standard one with simple formats of reporting so that it can be completed in time with recognition and participation of every expert called for. Any kind of intervention must be prevented. Overall objective is very clear that everybody is for development of the nation with optimal use of the resources. May it be Educators, Trusts, Faculty, Supporting staff or regulatory bodies etc.

The important aspect here is natural talent one has got and he/she should be given every possible chance to excel in that field. Today there is little difference between the educated and uneducated because they are devoted to the same end: Money making. Education commences at the mother's knee, and every word spoken to little children tends towards the formation of character.❑

(Professor, Structural Engineering Department, JNV University, Jodhpur)

Towards National Education as Envisaged by Maharishi Aurabindo

National education must aim at developing the spirit of self – reliance through which 'national people' shall be built up. Education ought to make national people and not machines or simply brain trained monsters. Obviously, the basis of self – reliance shall be an impeccable concept of 'Swabhimana' and Swabhimana is properly possible only when one knows who and what he is, what his ancestry is. In simpler words, it shall only be the knowledge of the Vedopanishadic knowledge system that can fill our minds with pride, and give us courage to walk through any troubled times, and tough weathers.

❑ **Dr. TS Girishkumar**

Bharat never had any dearth of scholars, visionaries and divine personalities. Education used to be one aspect, where most had put in their thoughts as well as aspirations. It had become practically impossible to say anything either new or different from things already discussed by the ancestors, and to this end, I was trying hard to select one of our ancestors from the many, to find guidance, while I sit and reflect in this area. They are all complete in themselves, and formidable. Allotting priorities becomes a trivial task and one should not even attempt that.

I went to look into the thoughts of Maharishi Aurabindo, primarily his is a very metaphysically formulated thought system of 'integrating' everything, and secondly his proximity to us in Vadodara. For Vadodarians, Shri Aurabindo is still among us, and for the department of Philosophy, he is there, it is his department after all.

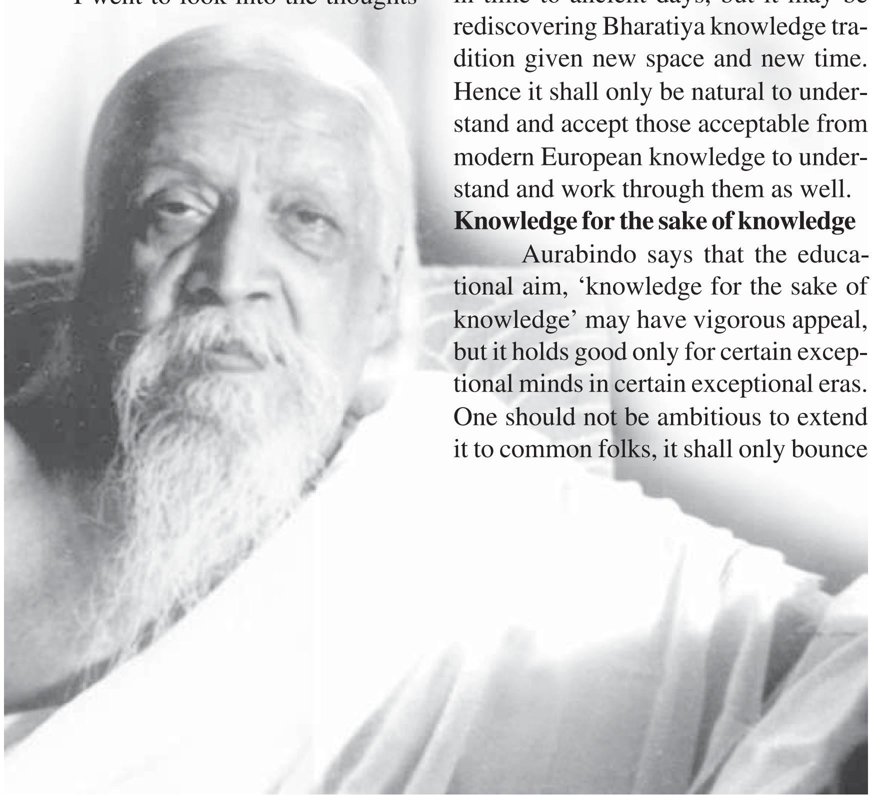

Culture as the foundation for Education

Shri Aurabindo speaks of education as National Education. It is not merely education, but it is national, it has to be for the Nation. The proper aim and principles therein must take Bharatiya Sanskriti as the foundation, upon which only, anything has to be discussed or constructed. But this cultural foundation is not any going back in time to ancient days, but it may be rediscovering Bharatiya knowledge tradition given new space and new time. Hence it shall only be natural to understand and accept those acceptable from modern European knowledge to understand and work through them as well.

Knowledge for the sake of knowledge

Aurabindo says that the educational aim, 'knowledge for the sake of knowledge' may have vigorous appeal, but it holds good only for certain exceptional minds in certain exceptional eras. One should not be ambitious to extend it to common folks, it shall only bounce

back; and lose all meaning and purpose entirely. Since such lofty thoughts are lofty, it shall be a mistake to extend it to common level. It may the case for exceptional minds, all minds around us are not exceptional, all eras are also not exceptional, and therefore, discussions upon it become unwanted and trivial.

Spirit of Self – Reliance

National education must aim at developing the spirit of self – reliance through which 'national people' shall be built up. Education ought to make national people and not machines or simply brain trained monsters. Obviously, the basis of self – reliance shall be an impeccable concept of 'Swabhimana' and Swabhimana is properly possible only when one knows who and what he is, what his ancestry is. In simpler words, it shall only be the knowledge of the Vedopanishadic knowledge system that can fill our minds with pride, and give us courage to walk through any troubled times, and tough weathers.

The knowledge, character and all noble thoughts of ancient Bharat, the best and acceptable knowledge which Europe can give, and the best method of teaching ought to be harmonised into a synthetic system of National lines which must essentially be under National Control.

Human is Siddha

Human is a homogeneous part of the cosmos, the universe. He has not come from without. There is an infinite energy pervading in the cosmos, universe, and the same infinite energy is also within the human. Education should aim at making man discover his reality and make him increase and enrich the infinite energy level in human. Since man is a homogeneous part of the universe, it is natural that the infinite energy is inbuilt in him; when the aim of education is to enrich and increase this energy already in human, to develop his potentiality, intellectuality and all achievements, he shall rise from the physical level to the vital level. Here the aim of education ought to be to increase this potentiality already implanted in human.

Once the energy becomes highest in human, he becomes 'Siddha'. Aurabindo follows the Upanishadic 'Kosa' theory of Annamaya, Pranamaya, Manomaya, Vijnanamaya and Ananadamayakosas, to describe the ascending human through education as physical to vital, through annamaya and pranamaya to buddhi kosha through what he calls as manabkosa.

Past and Future

The past days had already spelt out how to purify man through morality and religion, subsequently added with clarifications from science, philosophy, art, literature etc. let us take that all these had worked together well to refine and purify man through education. Future holds a different task, entirely different from what had been going on, though not altogether new.

The task of future is to conquer emotions and intellect through Yoga as the method and means. With and through Yoga, the basic (mundane) qualities and ideas shall

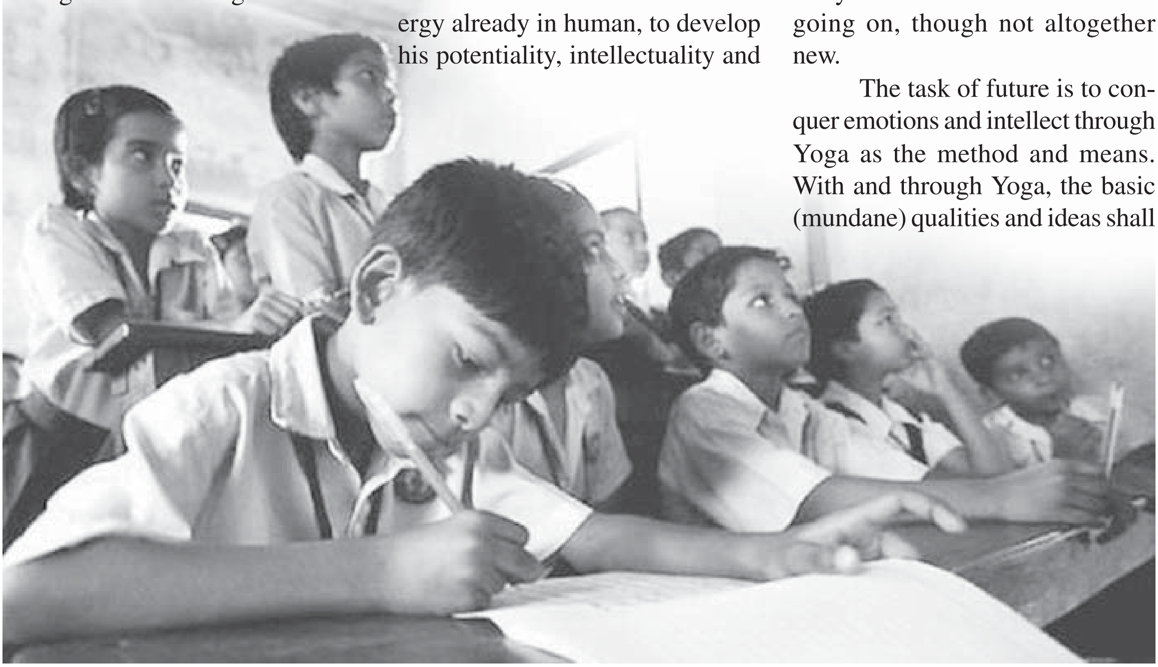

get replaced by the higher ideas, which already move within, to finally 'still' all ideas and the person acquires 'likeness', union or identification with the ultimate reality, and gets placed in the service of God. Aurabindo calls this stage as 'Mukti', which is the eternal goal of freedom and this at once becomes immortality.

Nature of mental stage

Human's mental stage depends on the moral stage and education divorced from the perfection of moral and emotional stage becomes necessarily 'injurious' to human progress. Moral stage has three ingredients in it, they are, the emotions, Samskara or habits and association and Swabhava of nature. The method of giving moral training should not be through imposing, and should not be through compulsions and commands. The best method of giving moral training is through suggestions and personal examples.

Primary schools should give primary education along with specially designed technical education which shall enable the students to earn livelihood as small artisans. Ninety per cent of the student's energy should be spent for 'the education of the active mental faculties', and the passive remaining faculty, which is memory, should only be given a subordinate place. Aurabindo correctly states that the school or university examinations should test the active faculty in a student, and not just his memory.

Nonetheless, the entire world still depends by and large on this memory testing alone. Perhaps Europe may not have the intellectual, spiritual, as well as cultural moorings towards this task of testing active faculty in a student, but Bharat definitely has these abilities. And most unfortunately, we had been going around making imperfect copies of education as practiced in Europe.

Teacher and Three Tasks

The teacher should only be a guide. Bharatiya epistemology has a complete understanding about the 'instruments of knowledge'. Yogis do not need such instruments of knowledge but common people do. The fundamental duty of teacher is to demonstrate to the students how to perfect their instruments of knowledge and to assist and encourage them in this process. Some people talk about 'imparting' knowledge, and some communists speak about 'producing' knowledge. Aurabindo disapproves both speculations, and asserts that teachers should show and enable students how to acquire knowledge for themselves. This becomes the first task of a teacher.

There is a growing 'soul' in each child. The soul should be enabled to draw the best in each individual. Through such a process of purification and refinement, teachers should make individuals perfect and refined for a noble cause. That is to refine individual existence and then setting the goal to proceed becomes the second duty of a teacher.

As a third principle, Aurabindo says that the teacher should work from the 'near' to the 'far'. The present is the 'near' and the future is the 'far'. The past must definitely remain as our foundation, which directly includes the Vedopanishadic knowledge tradition, and it shall be on this foundation of the past that one operates. The present shall be the material and mundane existence, and the future should be the goal. Yoga as integrating naturally comes at the matured existential level.

Shri Aurabindo's philosophy is 'Integral Yoga'. Here one finds him displaying the essence of Bharatiya epistemology of union of all, and not at all finding any differences as done in European knowledge traditions. When he speaks as everything being divine, he gets closer to Vishishtadvaita, and when he speaks of illusions, he is seen closer to Advaita. When he speaks about the subtle descending to the gross, it reminds us of Hegel and his absolute: and when he tries to negate a principle, knowledge for the sake of knowledge, he has Immanuel Kant in his mind.

As everything is essentially divine, a Yoga or union of everything shall be the desideratum. After the formal training of intellect all these days, the focus need now to be shifted to training of the emotion, spirit and a union of the vital, the subtle, with what may be known as the mundane. The gross, the mundane shall wither away in the process, but that is only naturally expected. In a word, education should aim at the future, focus should be on the inner essence rather than the periphery, the intellect, for which Yoga becomes the only available method. Ultimately, like in all endeavours, the end goal remains the same of that of Moksha, and as the Upanishads rightly say, "Sa Vidya Ya Vimuktaye".❑

(Professor of Philosophy,
M.S. University, Baroda)

हमें यह बात अच्छी तरह समझनी होगी कि जब तक अकादमिक शिक्षा में कौशल विकास पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक देश के करोड़ों युवाओं को हुनरमंद बनाने की मोदी सरकार की मुहिम सफल नहीं हो पायेगी क्योंकि शिक्षा ही वह रास्ता है जिसके जरिये बुनियादी स्तर पर बदलाव लाया जा सकता है। आज लाखों युवाओं के पास इंजीनियरिंग या तकनीकी डिग्री तो है लेकिन कुछ भी कर पाने का स्किल नहीं है जिसकी वजह से देश भर में हर साल लाखों इंजीनियर बेरोजगारी का दंश झेलने को मजबूर हैं। हमें यह बात अच्छी तरह से समझनी होगी की 'स्किल इंडिया' के बिना 'मेक इन इंडिया' का सपना भी पूरा नहीं हो सकता इसलिए इस दिशा में ठोस और समयबद्ध प्रयास करने होंगे।

तकनीकी शिक्षा का निराशाजनक दौर

❑ **शशांक द्विवेदी**

देश में इस समय तकनीकी और उच्च शिक्षा सबसे बुरे दौर में है। पिछले कुछ सालों से उच्च शिक्षा का ढाँचा चरमरा सा गया है। यूपीए के शासनकाल में 2010 से तकनीकी शिक्षा में गुणवत्ता की नींव कमजोर होने लगी थी और देश भर में इंजीनियरिंग सहित कई तकनीकी कोर्सों में लाखों सीटें खाली रहने लगी थी जिसका आँकड़ा साल दर साल बढ़ता गया लेकिन केंद्र सरकार ने इतने संवेदनशील मुद्दे पर कुछ नहीं किया। पिछले एक साल से एनडीए सरकार ने भी इस स्थिति से निपटने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाये हैं। हालत यह यह है कि वर्तमान सत्र में देश में तकनीकी और उच्च शिक्षा में सात लाख से ज्यादा सीटें खाली हैं। यह स्थिति साल दर साल बदतर होती जा रही है। उधर तकनीकी और इंजीनियरिंग स्नातकों में बेरोजगारी बढ़ रही है।

दरअसल सरकार का सारा ध्यान कुछ सरकारी यूनिवर्सिटीज मसलन- आईआईटी, आईआईएम, एनआईटी जैसे मुट्ठीभर सरकारी संस्थानों पर है जबकि देश भर में 95 प्रतिशत युवा निजी विश्वविद्यालयों और संस्थानों से प्रशिक्षण हासिल करते हैं। सीधी बात है कि अगर इन 95 प्रतिशत छात्रों पर कोई संकट होगा तो वह पूरे देश की अर्थव्यवस्था के साथ सामाजिक स्थिति को भी नुकसान पहुंचाएगा। सिर्फ पाँच प्रतिशत सरकारी संस्थानों की बदौलत विकसित भारत का सपना साकार नहीं हो सकता। उच्च शिक्षा में जो मौजूदा संकट है, उसे समझने के लिए सबसे पहले इसकी संरचना को समझना होगा- मसलन एक तरफ सरकारी संस्थान है तो दूसरी तरफ निजी संस्थान और विश्वविद्यालय हैं। निजी संस्थान भी दो तरह के हैं- एक जो छात्रों को डिग्री के साथ हुनर भी देते हैं, ताकि वे रोजगार प्राप्त कर सकें।

ये संस्थान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए

प्रतिबद्ध हैं और उसके लिए लगातार प्रयास कर रहे हैं। ये छात्रों के स्किल डेवलपमेंट पर ध्यान देते हुए उन्हें उच्च स्तर की ट्रेनिंग मुहैया करा रहें हैं वही दूसरी तरफ कई प्राइवेट यूनिवर्सिटी और संस्थान सिर्फ डिग्री देने की दुकान बन कर रह गये हैं। ये खुद न कुछ अच्छा करते हैं बल्कि जो भी संस्थान बेहतर काम करनें की कोशिश करता है, उसके खिलाफ काम करने लगते हैं साथ में कुछ अच्छे संस्थानों और विश्वविद्यालयों को बेवजह बदनाम करने की कोशिश की जाती है और इस काम में कई बार मीडिया का सहारा लेकर कई गलत खबरें और गलत तथ्य प्लाट किये जाते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि पिछले पाँच सालों में उच्च और तकनीकी शिक्षा में छाई इतनी मंदी के बाद भी इन संस्थानों और यूनीवर्सिटीज में पर्याप्त संख्या में छात्र हैं। एक तरह जहाँ देश के अधिकांश संस्थानों में लाखों की संख्या में सीटें खाली हैं, वही दूसरी तरफ इनकी सीटें भरी हुई है। इसी से पता चलता है कि ये गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा देने के लिए प्रतिबद्ध हैं जिसकी वजह से छात्र इनकी तरफ आकर्षित हो रहे हैं।

अधिकांश निजी संस्थान उच्च शिक्षा में छाई मंदी से इस कदर हताश और निराश हो चुके हैं कि अब कुछ नया नहीं करना चाहते। न उनके पास छात्रों को स्किल्ड बनाने की कोई कार्य योजना है। दूसरी तरफ जो संस्थान अच्छी और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा और स्किल ट्रेनिंग देने की कोशिश कर रहे हैं, उन्हें नियम-कानून का पाठ पढ़ाया जा रहा है और तरह-तरह से परेशान किया जा रहा है। मतलब वे स्वतंत्र रूप से काम नहीं कर पा रहे हैं। कहने का मतलब यह कि जो संस्थान देशहित में, छात्रहित में कुछ इनोवेटिव फैसले ले रहे हैं, वो सरकारी लालफीताशाही का शिकार हो रहे हैं। कुल मिलाकर यह स्थिति बदलनी चाहिए और दशकों पुराने कानून बदलने चाहिए। शिक्षाविद् डॉ अशोक कुमार गदिया के अनुसार हर संस्थान चाहे वो सरकारी हो या निजी, उसे अपने स्तर पर छात्रों को स्किल ट्रेनिंग की आजादी मिलनी चाहिए। साथ ही देश के सभी तकनीकी और उच्च शिक्षण संस्थानों में स्किल डेवलपमेंट को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाने की कोशिश होनी चाहिए। क्योंकि देश में स्किल्ड युवाओं की भारी कमी है। पिछले दिनों सीआईआई की इंडिया स्किल रिपोर्ट-2015 के मुताबिक हर साल सवा करोड़ युवा रोजगार बाजार में आते हैं और इनमे से 37 प्रतिशत ही रोजगार के काबिल होते हैं। यह आँकड़ा कम होने के बावजूद पिछले साल के 33 प्रतिशत के आँकड़े से ज्यादा है और संकेत देता है कि युवाओं को स्किल देने की दिशा में धीमी गति से काम हो रहा है। डिग्री और स्किल के बीच फासला बहुत बढ़ गया है। इतनी बड़ी मात्रा में पढ़े-लिखे इंजीनियरिंग बेरोजगारों की संख्या देश की अर्थव्यवस्था और सामजिक स्थिरता के लिए ठीक नहीं है ।

सच्चाई यह है कि हम इंडस्ट्री की माँग के मुताबिक उच्च गुणवत्ता और युवाओं को 'स्किल्ड' बनाने वाली शिक्षा नहीं दे पाए। जबकि दुनिया के कई छोटे देश उच्च गुणवत्ता वाली तकनीकी शिक्षा देने में हमसे बहुत आगे हैं। स्किल डेवलपमेंट के मामले में पूरे एशिया क्षेत्र में दक्षिण कोरिया ने चमत्कार कर दिखाया है। आज की तारीख में उसके 95 प्रतिशत से ज्यादा युवा 'स्किल्ड' हैं। स्किल डेवलपमेंट के मामले में दक्षिण कोरिया पूरी दुनिया के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण है। उसके जबर्दस्त विकास के पीछे स्किल डेवलपमेंट का सबसे बड़ा योगदान है। इस मामले में उसने जर्मनी को भी पीछे छोड़ दिया है। 1950 में दक्षिण कोरिया की विकास दर हमसे बेहतर नहीं थी। लेकिन इसके बाद उसने स्किल विकास में निवेश करना शुरू किया। यही वजह है कि 1980 तक वह भारी उद्योगों का हब बन गया। उसके 95 प्रतिशत मजदूर स्किल्ड या वोकेशनली ट्रेंड हैं जबकि भारत में यह आँकड़ा तीन प्रतिशत है। ऐसे में भारत कैसे विकसित राष्ट्र का रुतबा हासिल कर सकता है, साथ ही कौशल विकास के बिना 'मेक इन इंडिया' और 'मेड इन इंडिया' का सपना कैसे पूरा होगा! कौशल विकास के लिए बेशक मोदी सरकार सकारात्मक दिशा में काम कर रही है लेकिन उच्च और तकनीकी शिक्षा की दशा और दिशा सुधारने की दिशा में कोई ठोस पहल होती नहीं दिख रही है जबकि हमें यह बात अच्छी तरह समझनी होगी कि जब तक अकादमिक शिक्षा में कौशल विकास पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक देश के करोड़ों युवाओं को हुनरमंद बनाने की मोदी सरकार की मुहिम सफल नहीं हो पायेगी क्योकि शिक्षा ही वह रास्ता है जिसके जरिये बुनियादी स्तर पर बदलाव लाया जा सकता है। आज लाखों युवाओं के पास इंजीनियरिंग या तकनीकी डिग्री तो है लेकिन कुछ भी कर पाने का स्किल नहीं है जिसकी वजह से देश भर में हर साल लाखों इंजीनियर बेरोजगारी का दंश झेलने को मजबूर हैं। हमें यह बात अच्छी तरह से समझनी होगी की 'स्किल इंडिया' के बिना 'मेक इन इंडिया' का सपना भी पूरा नहीं हो सकता इसलिए इस दिशा में ठोस और समयबद्ध प्रयास करने होंगे। इतनी बड़ी युवा आबादी से अधिकतम लाभ लेने के लिए भारत को उसे स्किल्ड बनाना ही होगा ताकि युवाओं को रोजगार व आमदनी के पर्याप्त अवसर मिल सकें।❑

शिक्षा में कब होगा मेक इन इंडिया

❑ अभिषेक कुमार

मुद्दा महज रैंकिंग नहीं है। रैंकिंग के नाम पर कैसे-कैसे खिलवाड़ मुमकिन हैं- यह हर कोई जानता है। साफ है कि विदेशी शिक्षा के जादू में और भी बहुत कुछ ऐसा है जो दुनिया भर के छात्रों को अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया की ओर खींच रहा है और जिसके बल पर वहाँ एक शानदार शिक्षा-उद्योग पनप गया है। मसलन, अमेरिका में कानून और चिकित्सा, ये दो ऐसे पेशे हैं जिनमें भरपूर कमाई की संभावना होती है। इन दोनों पाठ्यक्रमों के लिए येल, हावर्ड और स्टैनफोर्ड की गणना सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में होती है। स्तर का मामला उच्च शिक्षा तक सीमित नहीं है। बल्कि अमेरिका में बच्चों की स्कूली शिक्षा की नींव को भी काफी मजबूत बनाया जाता है। प्राइमरी से लेकर हाई स्कूल तक की शिक्षा मुफ्त होती है। हालांकि वहाँ भी प्राइवेट स्कूल हैं, जो अपेक्षा महँगे होते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि काउंटी यानी सरकारी स्कूल से निकला बच्चा प्राइवेट स्कूल के बच्चे से किसी मामले में उन्नीस साबित हो।

अच्छी शिक्षा लगातार महँगी हो रही है। सरकारी शिक्षण संस्थाओं के बजाय निजी स्कूल-कॉलेजों को तरजीह देने वाले माँ-बाप हमेशा यह रोना रोते हैं कि इतनी महँगाई में शिक्षा का खर्च उठाना भारी पड़ने लगा है। पर इसका एक विरोधाभास भी है। लोगबाग अपने बच्चों को विदेशी डिग्री के लिए बाहर भेजना पसंद कर रहे हैं और इसके वास्ते समान डिग्री या कोर्स के लिए दस गुना ज्यादा खर्च खुशी-खुशी उठाने को तैयार हैं। इस साल जुलाई में भारतीय अभिभावकों ने विदेश में पढ़ रहे अपने बच्चों को मेंटेनेंस के नाम पर ही 11.39 करोड़ डॉलर भेजे जो अपने आप में एक रिकॉर्ड है। बीते एक साल में इस रकम में छह गुने का उछाल हालांकि ये कुछ और संदेहों को जन्म दे रहा है। जैसे, इसमें आयकर विभाग की नजर बचा कर रकम विदेश भेजने का कोई खेल हो सकता है, पर यह तो तय है कि विदेशी शिक्षा का मोह कम होने के बजाय बढ़ता जा रहा है। प्रधानमंत्री मोदी के लिए यह एक नई चुनौती है, जो सवा साल से देश में 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम चला रहे हैं, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में तो उनके आह्वान की हवा निकालने वाली मानसिकता के ही दर्शन हो रहे हैं।

इस बारे में पिछले साल एसोचैम ने टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के साथ मिल कर एक सर्वेक्षण किया था जिसमें विदेशी शिक्षा के प्रति बढ़ते सम्मोहन के कारणों की टोह ली गई थी। सर्वेक्षण के आधार पर एसोचैम ने 'रीअलाइनिंग स्किलिंग टुवड्र्स मेक इन इंडिया' नामक रिपोर्ट तैयार की थी, जिसमें बताया गया कि भारतीय अभिभावक हर साल अपने बच्चों को शिक्षा के लिए विदेश भेजने पर छह से सात अरब डॉलर की भारी-भरकम रकम खर्च करते हैं। सिर्फ नेता और अभिनेता नहीं, देश का विशाल मध्यम वर्ग भी कर्ज लेकर ऐसा करने में पीछे नहीं है। कई विदेशी कॉलेज-विश्वविद्यालय शिक्षा के मानकों यानी रैंकिंग में बेशक हमसे आगे हो सकते हैं, पर जरूरी नहीं है कि हमारे सारे छात्र उन्हीं ऊँची रैंकिंग वाले नामी संस्थानों में दाखिला पा जाते हैं। बल्कि ज्यादातर छात्र तो ऐसे संस्थानों में जाकर पढ़ाई करते हैं, जिनसे बेहतर नहीं तो समान दर्जे की शिक्षा हमारे देश के कॉलेज-विश्वविद्यालय भी देते हैं, वह भी आठ-दस गुने कम खर्च में।

देश के भीतर ही शिक्षा के देसी और सस्ते विकल्प होने के बावजूद अभिभावक ऐसा क्यों करते हैं, यह तो विचार का विषय है, लेकिन इसके साथ ही यह जानना भी जरूरी है कि आखिर विदेशी शिक्षा में ऐसा कौन-सा आकर्षण है जो भारत-चीन समेत कई और मुल्कों के छात्रों को अपनी ओर खींचता है और लोगबाग इसके लिए लाखों का कर्ज लेने में भी नहीं हिचकते।

जहाँ तक सवाल यह है कि विदेशी शिक्षा के मुकाबले देसी शिक्षा कितनी सस्ती है, तो इसका खुलासा वर्ष 2013 में एक अंतरराष्ट्रीय बैंक (एचएसबीसी) द्वारा कराए गए सर्वेक्षण 'द वैल्यू ऑफ एजुकेशन: स्प्रिंगबोर्ड फॉर सक्सेस' में हो चुका है। इस सर्वेक्षण से साबित हुआ था कि अंडरग्रेजुएट कोर्स के लिए भारत में बाहर से पढ़ने आए छात्र का विश्वविद्यालयी फीस और रहने-खाने का सालाना औसत खर्च 5643 डॉलर है जिसमें से महज 581 डॉलर फीस के रूप में चुकाए जाते हैं। इसके विपरीत, आस्ट्रेलिया में यह खर्च 42,093 डॉलर, सिंगापुर में 39,229 डॉलर, अमेरिका में 36,565 डॉलर और ब्रिटेन में 35,045 डॉलर सालाना होता है। पंद्रह देशों में साढ़े चार हजार अभिभावकों पर किए गए सर्वेक्षण में यह बात भी निकल कर सामने आई थी कि भारत में भले ही सबसे सस्ती उच्च शिक्षा मिल रही हो, लेकिन बासठ प्रतिशत भारतीय अभिभावक अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से आस्ट्रेलिया, सिंगापुर और अमेरिका भेजने को अहमियत देते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं, इसका एक जवाब ब्रिटिश कंपनी- क्यूएस (क्वैकुरेली साइमंड्स लिमिटेड) द्वारा प्रकाशित की गई वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग में दिया गया।

इस रैंकिंग में शामिल पहले दो सौ विश्वविद्यालयों में से एक भी भारत का नहीं था। आइआइटी-मुंबई इस सूची में 222वें स्थान पर था, जबकि आइआइटी-दिल्ली 235वें स्थान पर। कानपुर, मद्रास और खड़गपुर स्थित आइआइटी की गिनती तीन सौ संस्थानों में होती है जबकि प्रतिष्ठित दिल्ली विश्वविद्यालय को अध्ययन-अध्यापन के मामले में 420-430 के बीच में रखा गया था। इस सूची में पहले दस स्थानों पर अमेरिकी और ब्रिटिश विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों का कब्जा बताया गया था, जिसमें अमेरिका का मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी पिछले कुछ वर्षों से लगातार पहले स्थान पर आ रहा है।

मुद्दा महज रैंकिंग का नहीं है। रैंकिंग के नाम पर कैसे-कैसे खिलवाड़ मुमकिन हैं- यह हर कोई जानता है। साफ है कि विदेशी शिक्षा के जादू में और भी बहुत कुछ ऐसा है जो दुनिया भर के छात्रों को अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया की ओर खींच रहा है और जिसके बल पर वहाँ एक शानदार शिक्षा-उद्योग पनप गया है। मसलन, अमेरिका में कानून और चिकित्सा, ये दो ऐसे पेशे हैं जिनमें भरपूर कमाई की संभावना होती है। इन दोनों पाठ्यक्रमों के लिए येल, हावर्ड और स्टैनफोर्ड की गणना सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में होती है। लेकिन ऐसा नहीं है कि अमेरिकी या ब्रिटिश अभिभावक अपने बच्चों को मेडिकल या एमआइटी से स्नातक कराने के लिए अपना घरबार अथवा कारोबार दाँव पर लगा दें या बैंकों से कठिन शर्तों पर कर्ज लें। बल्कि शिक्षा के लिए वहाँ छात्रों को ही आसानी से कम ब्याज दरों पर कर्ज मिल जाता है। वे शिक्षा पर हुए कर्ज को नौकरी मिलने के बाद चुकाते हैं। मेडिकल और कानून की डिग्रियों के अलावा वहाँ ऐसी अनगिनत डिग्रियाँ और पाठ्यक्रम हैं जिनके जरिए एक अच्छा रोजगार पाया जा सकता है।

स्तर का मामला उच्च शिक्षा तक सीमित नहीं है। बल्कि अमेरिका में बच्चों की स्कूली शिक्षा की नींव को भी काफी मजबूत बनाया जाता है। प्राइमरी से लेकर हाई स्कूल तक की शिक्षा मुफ्त होती है। हालांकि वहाँ भी प्राइवेट स्कूल हैं, जो अपेक्षाकृत महँगे होते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि काउंटी यानी सरकारी स्कूल से निकला बच्चा प्राइवेट स्कूल के बच्चे से किसी मामले में उन्नीस साबित हो। इसके आगे वहाँ कॉलेज स्तर की जो शिक्षा है, वह भारत की उच्च शिक्षा से इस मामले में अलग है कि वहाँ उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य पूरी तरह व्यावसायिक होता है। अमेरिका में शिक्षा का मकसद भारत की तरह मात्र डिग्रियों की संख्या बढ़ाना नहीं होता, बल्कि उस पढ़ाई के जरिए छात्रों को रोजगार के लायक बनाना होता है। सरकारी और प्राइवेट, दोनों ही तरह के यूनिवर्सिटी कॉलेजों में स्नातक पाठ्यक्रमों की इतनी भरमार होती है कि छात्र अपनी शिक्षा, रुचि और आर्थिक क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम चुन सकते हैं।

वैश्विक पैमानों पर आमतौर पर एक शानदार विश्वविद्यालय की पहचान उसकी फीस और फैकल्टी को मिलने वाले वेतनमान से की जाती है। यह भी ध्यान रखना होगा कि अब अमेरिका, सिंगापुर और आस्ट्रेलिया में उच्च शिक्षा एक उद्योग का रूप ले चुकी है। चीन और भारत से करीब चार-पाँच लाख युवा हर साल यहाँ उच्च शिक्षा के लिए पहुँचते हैं। दूसरे देशों से भी बड़ी तादाद में विद्यार्थी वहाँ हर साल जाते हैं। इसके उलट भारत में सरकारी मदद के भरोसे चल रहे आईआईटी अथवा आईआईएम या मेडिकल कालेज ढाँचागत सुविधाओं में अपेक्षित सुधार करने के बजाय न्यूनतम सुविधाओं और सामान्य वेतनमान पर न्यूनतम फैकल्टी से काम चलाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। अपने देश में प्राइवेट कॉलेजों में तो और भी खराब नजारे दिखाई पड़ते हैं जहाँ तदर्थ फैकल्टी के बल पर बड़े-बड़े कोर्स चलाए जा रहे हैं।

यों संख्या के आधार पर देखें तो देश में उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाओं का अकाल नहीं है। देश में फिलहाल करीब चार सौ विश्वविद्यालय और लगभग बीस हजार उच्च शिक्षा संस्थान हैं। इनमें सात लाख से ज्यादा प्राध्यापक कार्यरत हैं। मोटे तौर पर इन शिक्षण संस्थानों में डेढ़ करोड़ से ज्यादा छात्र पढ़ाई कर रहे थे। पर देश में सैकड़ों विश्वविद्यालयों और हजारों कॉलेजों की उपस्थिति के बरक्स यह तथ्य हैरान करने वाला है कि इनमें से कोई भी विश्वविद्यालय उस स्तर की शिक्षा क्यों नहीं दे पा रहा है जिसके बल पर उसे दुनिया के अव्वल सौ विश्वविद्यालयों में शामिल किया जा सके। अच्छी शिक्षा के इसी अकाल का अंजाम है कि विदेशी विश्वविद्यालय की उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा पाने के लिए हर साल भारत से डेढ़ लाख से पौने दो लाख छात्र विदेश चले जाते हैं।

जब देश में ही विदेशी कैंपस मौजूद रहेंगे, तो इससे विदेशी शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च में कटौती से लेकर वे सारे फायदे हो सकेंगे जिनके लिए विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत लाने की वकालत होती रही है। हाल के वर्षों में खास तौर से ऑस्ट्रेलिया में भारतीय छात्रों के साथ हुए नस्लीय बर्ताव की घटनाओं के मद्देनजर भी यह एक बड़ी राहत होगी क्योंकि तब विदेशी डिग्री के लिए बाहर जाने की जरूरत खत्म हो जाएगी। इससे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ने की भी संभावना बन सकती है। हो सकता है कि तब हमारे शिक्षण संस्थान इन्फ्रास्ट्रक्चर आदि के मामलों में भी उनसे होड़ लेने की कोशिश करें। अगर ऐसा हो सका तो निश्चित ही इससे उच्च शिक्षा का माहौल काफी सुधरेगा।❑

भय के माहौल में कोमल मन

❑ दिलीप चुघ

हमारे समाज में बच्चों को शक्ति और सत्ता से नियंत्रित करने की परंपरा और उसकी स्वीकृति बड़े पैमाने पर और बहुत पहले से रही है। अपने विचारों को बहुत ज्यादा बदल नहीं पाए हैं हम। यही कारण है कि अहम नीतियाँ और कड़े कानून बनने के बाद आज भी स्कूलों और परिवारों में बहुत से बच्चों को शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना से गुजरना पड़ता है। इसलिए बच्चों को भयमुक्त माहौल देने के विचार के तार्किक आधारों को ठीक से समझना शिक्षकों और अभिभावकों दोनों के लिए ही जरूरी है। एक और बात यह कि जब भी भयमुक्त माहौल की बात की जाती है तो उसका एक अभिप्राय बच्चों को स्वच्छंद छोड़ने से लिया जाता है कि अब तो करने दो उन्हें जो करना है, अब तो हम बच्चों को कुछ कह ही नहीं सकते। सवाल यह है कि बच्चों को क्या कहें और कैसे कहें? सवाल यह है कि बच्चों को अपनी बात कहने के मौके क्यों न मिले?

स्कूलों में बच्चों के लिए भयमुक्त माहौल होने का विचार शिक्षा जगत् में कोई नया नहीं है। भारत में आधिकारिक तौर पर 1986 और 1992 की शिक्षा नीतियों में साफ तौर पर यह सिफारिश की गई थी कि हमारे शिक्षा तंत्र में दंड और भय का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। 1992 में ही बाल अधिकार अधिवेशन में जारी बाल अधिकारों पर सहमति जताते हुए सदस्य देशों (जिसमें भारत भी एक सदस्य है) ने अपने हस्ताक्षर किए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में विद्यालयों में दंड-भय के स्थान पर सहभागी प्रबंध और आत्मानुशासन की पैरवी की गई थी, जिसमें अपेक्षा थी कि विद्यालय में शिक्षक और बच्चे मिलकर नियमों का निर्माण करें और सहभागी प्रबंधन की व्यवस्था लागू हो। फिर इसके बाद आये कानून नि:शुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 ने इस विचार को कानूनी रूप दे दिया। प्रावधान किया गया है कि बच्चों को किसी भी प्रकार की शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना नही दी जाएगी। अगर किसी शिक्षक को ऐसा करते हुए पाया गया तो उसके साथ विधान के अनुसार अनुशासनात्मक कार्रवाई की जायेगी। कुछ शिक्षक तो इस कानून पर इस तरह से कटाक्ष भी करते हैं कि जैसे उनसे उनकी शक्ति और सत्ता छीन ली गई हो।

बच्चों के लिए भयमुक्त माहौल के इस

कई बार बच्चों को यह बताने का मौका ही नहीं मिल पाता कि वह खिड़की के बाहर क्यों देख रहा था! उसे यह कहने की आजादी नहीं है कि शिक्षक का पढ़ाया कुछ समझ नहीं आ रहा, वह नहीं कह पाता कि रोज एक ही तरह के अभ्यास करके वह थक चुका है। आखिर इस माहौल में किस तरह का समाजीकरण हो रहा है हमारी आने वाली पीढ़ी का? थोड़ा तो उन्हें भी अपनी बात कहने का मौका देना होगा। नहीं तो ऐसे बच्चे या तो आज्ञाकारी-दब्बू इंसान बनेंगे या फिर विद्रोही ! बच्चों को आरंभ से ही ये मौके देने होंगे जिससे वे समझें कि संवाद करने, अपने विचार रखने से भी गलतियों का हल निकाला जा सकता है। बात करने से भी बात बनती है।

आधार को समझने के लिए हमें मस्तिष्क के एक भाग हिप्पोकेंपस की कार्यप्रणाली और भूमिका को समझना पड़ेगा। हिप्पोकेंपस हमारी प्रक्रियागत स्मृति से जुड़ा होता है। यह नई स्मृतियों का निर्माण करता है। कोई नया अनुभव पहले यहीं प्रसंस्कृत होता है, फिर दीर्घकालीन स्मृतियों में संरक्षित हो जाता है। जब भी कोई इंसान डर-भय की परिस्थिति से गुजर रहा होता है तो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली कोर्टिसोल नामक हारमोन रक्त नलिकाओं में प्रवाहित करती है, जो वसा और मांसपेशियों से ऊर्जा छोड़ता है। और शरीर बचाव की परिस्थिति के लिए तैयार हो जाता हैं।

हिप्पोकेंपस में सकेंद्रित अभिग्राहक रक्त में बढ़े कोर्टिसोल के स्तर को भाँप लेते हैं और ये अभिग्राहक हिप्पोकेंपस को परिस्थिति की सशक्त स्मृति बनाने को मजबूर कर देते हैं। मान लीजिए आप घूमने कुछ मित्रों के साथ पहाड़ पर चढ़ रहे हैं। रास्ते में अचानक कोबरा साँप फन फैलाये बैठा है। आप उसे देखते हैं और डर जाते हैं। वापस दौड़ पड़ते हैं और बाकी मित्रों को जाकर बताते हैं। इस अनुभव में साँप की छवि और वह जगह इस कदर आपके मन मस्तिष्क पर छप जाती है कि ताउम्र आपको याद रहती है। यह इसी जैविक क्षमता के फलस्वरूप होता है। यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। आप अंदाजा लगा सकते हैं कि सुरक्षित जीवन जीने में मस्तिष्क की यह तंत्रिकीय इंजीनियरिंग हमारी कितनी मदद करती है।

इसके कुछ दूसरे पहलू भी हैं। यह प्रतिरक्षा प्रणाली अचानक से पैदा हुई खतरनाक परिस्थिति से बचाव और भविष्य में संभावित खतरे से बचाव के लिए है। लेकिन आप कल्पना करें कि एक बच्चा जो कि आज होमवर्क न किए जाने से कल मिलने वाली प्रताड़ना के बारे में सोच-सोच कर भयग्रस्त है और उस समय तक रहेगा जब तक की उसका सामना उस शिक्षक से न हो जाय। इस परिस्थिति में भी शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली वैसे ही व्यवहार करती है और लगातार कोर्टिसोल रक्त में प्रवाहित किया जाता है। ऐसा होने से रक्त में बार-बार बढ़ने वाला कोर्टिसोल हिप्पोकेंपस में अवस्थित जरूरी तंत्रिकाओं को नष्ट कर देता है। इससे याद रखने और सीखने की क्षमता प्रभावित होती है। रक्त में कोर्टिसोल के स्तर का लगातार बढ़ते रहना उच्च रक्तचाप, हृदयरोग और अल्सर जैसी गंभीर बिमारियों को आमंत्रित करता है।

इस पूरी बात का मनोवैज्ञानिक पहलू यह है कि हम भय पैदा कर बच्चों को कक्षा में बैठा तो सकते हैं, कुछ समय के लिए उन्हें नियंत्रित भी रख सकते हैं लेकिन वास्तव में कुछ सिखा पाने का दावा नहीं कर सकते हैं। परिवार, समाज और विद्यालय बच्चों के सामाजीकरण के मुख्य घटक हैं। इन संस्थाओं से गुजरते हुए बच्चे जब यह देखते हैं कि कोई भी बच्चा जब गलती करता है तो उसे डाँट पिला दी जाती है, अगर कुछ बड़ी गड़बड़ हुई तो डंडे और हाथ-पैरों से पीटा भी जाता और उसमें अपेक्षा यह होती है कि बच्चे में सुधार होगा। हम सभी जानते है कि बच्चों में सामान्यीकरण करने की क्षमता होती है।

सुधार की अपेक्षा में लगातार होने वाली यह गलती की प्रक्रिया के पैटर्न को पकड़ कर बच्चे आसानी से यह समझ बनाने लगते है कि गलती का सुधार तो केवल मार पीट कर या डरा कर हो सकता है। विद्यालयों में काम के दौरान मेरे साथ ऐसे कई अनुभव रहे हैं जिसमें कि बच्चे शिक्षक से यह कहते हुए पाए जाते हैं अमुक बच्चे को तो मुर्गा बना दो, लप्पड़ लगाओ तभी सुधरेगा। यहाँ तक कि किसी शिक्षक के द्वारा दिए गए दंड को जायज ठहराने वाले कथन भी सुनाई पड़ते हैं। इस पूरे अनुभव से बच्चे अपनी यह समझ बना रहे होते हैं कि गलती को सुधारने का एक मात्र हल दंड दिया जाना है।

सवाल यह पैदा होता है कि ऐसे बच्चों का निर्माण कर हम समाज को कहाँ ले जा रहे हैं। क्या ऐसा समाज जहाँ संवाद और बातचीत के रास्ते खत्म हो जाएँगे? दूसरी बात यह कि हमारे लोकतांत्रिक समाज में कोई वयस्क कुछ ऐसा कर्म कर देता है जो कि समाज की नजर से अवाँछनीय है तो क्या सामान्य तौर पर उसे सीधे ही दंड दे दिया जाता है। नहीं, उसके साथ न्यायालय की एक पूरी प्रक्रिया जुड़ी होती है, जहाँ पर वह अपने बचाव में तर्क दे सकता है, बहस कर सकता है। हो यह भी सकता है कि समाज के कुछ लोगों को उसका कर्म ठीक न लगा हो लेकिन फिर भी न्यायालय उसके तर्कों और साक्ष्यों के आधार पर उसे ससम्मान बरी कर सकता है। लेकिन हमारे विद्यालयों और परिवारों में अक्सर क्या होता है?

कई बार बच्चों को यह बताने का मौका ही नहीं मिल पाता कि वह खिड़की के बाहर क्यों देख रहा था! उसे यह कहने की आजादी नहीं है कि शिक्षक का पढ़ाया कुछ समझ नहीं आ रहा, वह नहीं कह पाता कि रोज एक ही तरह के अभ्यास करके वह थक चुका है। आखिर इस माहौल में किस तरह का समाजीकरण हो रहा है हमारी आने वाली पीढ़ी का? थोड़ा तो उन्हें भी अपनी बात कहने का मौका देना होगा। नहीं तो ऐसे बच्चे या तो आज्ञाकारी-दब्बू इंसान बनेंगे या फिर विद्रोही ! बच्चों को आरंभ से ही ये मौके देने होंगे जिससे वे समझें कि संवाद करने, अपने विचार रखने से भी गलतियों का हल निकाला जा सकता है। बात करने से भी बात बनती है। ❑

नोबेल के हकदार थे डॉ. उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी

उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी की दवा यूरिया स्टीबामीन काला-अजर पर बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुई। दवा की प्रसिद्धि जल्दी ही भारत के साथ साथ सुदूर देशों में पहुँच गई थी। दवा का व्यापारिक उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। ब्रह्मचारी चाहते तो दवा का पेटेन्ट ले सकते थे। ब्रह्मचारी ने पेटेन्ट के लिए आवेदन ही नहीं किया। आवेदन नहीं करने का कारण भारतीय सोच थी। भारत में मान्यता रही है कि विद्या से प्राप्त किसी सिद्दि से पैसा नहीं कमाना चाहिए। उपेन्द्रनाथ दानवीर थे। अनेकों संस्थाओं को दान देते रहते थे। यूरिया स्टीबामीन को देश के लगभग सभी अस्पतालों को नि:शुल्क भिजवाया था। विद्यार्थियों के लिए अनेक प्रकार की छात्रवृतियों की व्यवस्था भी ब्रह्मचारी ने की थी।

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

भारत के लिए, आज तक का एक मात्र विज्ञान नोबेल पुरस्कार, चन्द्रशेखर वेंकट रमन ने 1930 में प्राप्त किया था। 1929 में पहली बार दो भारतीयों को नोबेल पुरस्कार हेतु नामित किया गया था। इनमें एक चन्द्रशेखर वेंकट रमन थे तो दूसरा नाम उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी का था। वेंकट रमन की तरह उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी को भी दो बार नोबेल पुरस्कार हेतु नामित किया गया था।

जीवन परिचय

उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी का जन्म 19 दिसम्बर, 1873 को बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के जमालपुर कस्बे में हुआ था। रेलवे की कार्यशाला के कारण जमालपुर महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उपेन्द्रनाथ के पिता नीलमणी ब्रह्मचारी पूर्वी रेल्वे में डॉक्टर थे। डॉ. नीलमणी के एक पूर्वज गोपाल मुखोपाध्याय संन्यास लेने के बाद गोपालभारती ब्रह्मचारी ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध हुए। गोपालभारती ब्रह्मचारी के वंशज आगे जाकर ब्रह्मचारी कहलाए। उपेन्द्रनाथ की माँ का नाम सौरभ सुन्दरी देवी था।

उपेन्द्रनाथ प्रारम्भ से ही अध्ययन में होशियार थे। जमालपुर में प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कर हुगली महाविद्यालय से गणित तथा रसायनशास्त्र, एक साथ दो विषयों में, स्नातक ऑनर्स की उपाधि प्राप्त की। गणित में अच्छे अंक आए थे मगर आगे के अध्ययन हेतु उपेन्द्रनाथ ने मेडीसिन व रसायनशास्त्र को चुना। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में मेडीसिन व सर्जरी में स्नातक बने। दो वर्ष के बाद ही एमडी की उपाधि विशेष योग्यता के साथ प्राप्त की। उन दिनों विशेष योग्यता प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य था। उपेन्द्रनाथ ने लाल रुधिर कणिकाओं के गुणों का अध्ययन कर, रुधिरलयन (हिमोलाइसिस) जैसे कठिन विषय में, पी.एचडी. की उपाधि भी प्राप्त की।

अध्ययन पूर्ण कर उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी ने राज्य चिकित्सा सेवा में प्रवेश किया। प्रथम फिजिशियन माने जाने वाले सर जेराल्ड बोमफोर्ड के वार्ड में कार्य करने का अवसर उपेन्द्रनाथ को प्राप्त हुआ। युवा उपेन्द्रनाथ की कार्य के प्रति निष्ठा तथा अनुसंधान प्रवृति से सर जेराल्ड बहुत प्रभावित हुए। सर जेराल्ड ने अपने प्रभाव से उपेन्द्रनाथ को ढाका मेडीकल कॉलेज में औषधि का शिक्षक नियुक्त करवा दिया। उपेन्द्रनाथ ने लगभग चार वर्ष उस पद पर कार्य किया और बाद में मेडीकल कॉलेज कलकत्ता में लौट आए। कलकत्ता आकर उपेन्द्रनाथ अनुसंधान के कार्य में जुट गए। जल्दी ही उपेन्द्रनाथ का नाम देश के योग्यतम डॉक्टरों में गिना जाने लगा। उपेन्द्रनाथ को पढ़ने की बहुत चाह थी। इनके निजी पुस्तकालय में बहुत पुस्तकें थी। 20 वर्ष मेडीकल कॉलेज में सेवायें देने के बाद उपेन्द्रनाथ अतिरिक्त फिजिसियन के रुप में राजकीय सेवा से सेवानिवृत हो गए।

सेवानिवृत्ति के बाद की सक्रियता

सेवानिवृत्ति के बाद, उपेन्द्रनाथ मेडीकल कालेज में उष्णकटिबंधिय बीमारियों के प्रोफेसर बन गए। साथ ही वे नेशनल मेडीकल इंस्टीट्यूट में उष्णकटिबंधिय बीमारियों में वार्ड के प्रभारी रूप में काम करने लगे थे। उन दिनों बच्चों व बड़ों में काला-अजर रोग का प्रकोप बहुत था। काला-अजर रोग लेइशनिया डोनोवानी नामक प्रोटोजुआ के संक्रमण के कारण होता है। काला अजर रोग का सर्वप्रथम वर्णन विलियम लेइशमान तथा चार्ल्स डोनोवान द्वारा किया गया था। यह एक संक्रामक रोग है जो मरु प्रदेश के मरु मक्खियों द्वारा फैलाया जाता है। काला-अजर के रोगी का प्लिहा व यकृत बढ़ जाते हैं। रक्त की कमी होने के साथ बुखार आने लगता है। शरीर में अतिरिक्त वर्णक बनने से शरीर का रंग गहराने लगता है। सम्भवत: इसी कारण इसे काला-अजर कहते हैं।

ब्राजील के एक डॉक्टर ने पाया कि एन्टीमोनिल टारट्रेट के पोटेशियम लवण के घोल को रोगी की शिरा में पहुँचाने से काला-अजर नियन्त्रित हो जाता है। कुछ समय बाद पता चला कि एन्टीमोनिल टारट्रेट का लम्बे समय तक प्रयोग करने का रोगी पर बुरा असर होता है। उपेन्द्रनाथ

ब्रह्मचारी ने दवा को सुधारने का संकल्प लिया। डॉ. उपेन्द्रनाथ ने एन्टीमोनिल टारट्रेट के सोडियम लवण से उपचार करना प्रारम्भ किया। परिणाम पहले से अच्छे रहे। इसका प्रयोग भी अधिक दिनों के बाद हानिकारक सिद्ध होने लगा। ब्रह्मचारी ने एन्टीमनी के लवण के स्थान पर एन्टीमनी धातु का प्रयोग प्रारम्भ किया। नए प्रयोग के अच्छे परिणाम मिले मगर यह विधि भी पूर्णत: दोष मुक्त नहीं थी। ब्रह्मचारी को अनुसंधान हेतु आर्थिक अनुदान तो मिला था फिर भी साधन बहुत सीमित थे।

19 दिसम्बर 1873 – 6 फरवरी 1946

ब्रह्मचारी कैम्पबेल अस्पताल के एक छोटे से कमरे में अनुसंधान में जुटे रहे। वर्तमान विज्ञान अनुसंधानकर्ताओं को यह जानकर आश्चर्य होगा कि ब्रह्मचारी के प्रयोग करने के कमरे में पानी का नल, गैस बर्नर व बिजली के बल्ब जैसी सामान्य सुविधाएँ भी नहीं थी। मिट्टी के तेल की चिमनी के प्रकाश में ब्रह्मचारी महीनों काम करते रहे थे। दिनभर व्यस्त रहने के कारण ब्रह्मचारी रात 10 बजे अनुसंधान हेतु उस छोटे कमरे में पहुँचते थे।

विपरीत परिस्थितियों में भी उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी ने काला-अजर को नियंत्रित करने वाला यौगिक खोज निकाला। ब्रह्मचारी ने उसे यूरिया स्टीबामीन नाम दिया था। यह यूरिया व पैरा-एमिनो-फेनिल स्टीबनिक अम्ल का यौगिक था। यूरिया स्टीबामीन रोग को ठीक करने के साथ प्लिहा व यकृत को सामान्य कर देता था। जिस छोटे कमरे में ब्रह्मचारी ने अनुसंधान किया था, उस कमरे को, शेष जीवन में ब्रह्मचारी तीर्थस्थान जैसा महत्त्व देते रहे। यौगिक के प्रथम निर्माण के समय को ब्रह्मचारी ने अपने जीवन का सर्वाधिक खुशी व गर्व देने वाला चिरस्मरणीय पल बताया है।

पारिवारिक जीवन

उपेन्द्रनाथ का विवाह नैनाबाला देवी के साथ हुआ। उनके दो पुत्र फणीन्द्रनाथ व निर्मल कुमार थे। ब्रह्मचारी ने एक अनुसंधान संस्थान की स्थापना की जहाँ उनके निर्देशन में उनके पुत्र अनुसंधान व निर्माण का कार्य करते थे। उपेन्द्रनाथ दानवीर थे। अनेकों संस्थाओं को दान देते रहते थे। यूरिया स्टीबामीन को देश के लगभग सभी अस्पतालों को नि:शुल्क भिजवाया था। विद्यार्थियों के लिए अनेक प्रकार की छात्रवृत्तियों की व्यवस्था भी ब्रह्मचारी ने की थी। 06 फरवरी, 1946 को डॉ. उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी ने दुनिया को सदा के लिए छोड़ दिया।

भारतीय परम्परा को निभाया-पेटेन्ट नहीं कराया

उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी की दवा यूरिया स्टीबामीन काला-अजर पर बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुई। दवा की प्रसिद्धि जल्दी ही भारत के साथ साथ सुदूर देशों में पहुँच गई थी। दवा का व्यापारिक उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। ब्रह्मचारी चाहते तो दवा का पेटेन्ट ले सकते थे। ब्रह्मचारी ने पेटेन्ट के लिए आवेदन ही नहीं किया। आवेदन नहीं करने का कारण भारतीय सोच थी। भारत में मान्यता रही है कि विद्या से प्राप्त किसी सिद्दि से पैसा नहीं कमाना चाहिए।

सम्मान की हुई बरसात

1942 में 5 अलग-अलग लोगों ने उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी को नोबेल पुरस्कार के लिए नामित किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के कारण, उस वर्ष नोबेल पुरस्कार की प्रक्रिया पूर्ण नहीं की जा सकी और उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी को पुरस्कृत होने की संभावना समाप्त हो गई। 2015 में मलेरिया व फाइलेरिएसिस की दवा खोजने पर मेडीशन का नोबेल पुरस्कार दिए जाने ने फिर सिद्ध कर दिया है कि उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी नोबेल पुरस्कार के हकदार थे।

डॉ.उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी को अपने जीवन में भरपूर सम्मान मिला। इतनी उपाधियाँ व मेडल मिले कि इस छोटे आलेख में उनका उल्लेख संम्भव नहीं है। इनके पैतृक घर के पास वाले विद्यालय का नाम बदल कर इनके पिता के नाम पर पूर्वास्थली नीलमणी संस्थान किया गया। गली का नाम बदल कर डॉ. यू.एन. ब्रह्मचारी गली रखा गया है। डॉ.उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्हें अधिक प्रसिद्धि काला-अजर की दवा खोजने पर प्राप्त हुई मगर उन्होंने कई अन्य क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय खोज कार्य किया था। डॉ.उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी के लगभग 150 अनुसंधान पत्र प्रकाशित हुए थे। ब्रह्मचारी भारत को ज्ञान सृजन का आदि स्थान मानते थे। कक्षा में प्रवचन देते समय उनके मन में यह भाव रहता था कि विद्यार्थी आगे जाकर देश की प्राचीन प्रतिष्ठा को बहाल करें। आशा है इस शिक्षक-वैज्ञानिक के जीवन से नई पीढ़ी प्रेरणा ग्रहण करेगी। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

गतिविधि

नई शिक्षा नीति, 2015 पर शैक्षिक संगोष्ठी सम्पन्न

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर द्वारा 'नई शिक्षा नीति 2015' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन 29 नवम्बर, 2015 को डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षा संकुल के सभागार में किया गया।

उद्घाटन सत्र में राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जे. पी. सिंघल ने बताया कि पाठ्यक्रम का केन्द्र शिक्षक नहीं होकर हमारा विद्यार्थी होना चाहिए जिसके निर्माण हेतु पाठ्यक्रम निर्माण की बात कर रहे हैं। पाठ्यक्रम खण्ड-खण्ड में शिक्षा की बात करते हैं जबकि शिक्षा में समग्रता या एकाग्रता लाई जानी चाहिए। अर्थात समग्र शिक्षा नीति होनी चाहिए। पूर्ववर्ती सरकारों द्वारा बनाई गई शिक्षा नीतियाँ भी अच्छी थी लेकिन उनका क्रियान्वयन प्रभावी ढंग से नहीं हो पाया इसलिए केन्द्र सरकार ने यह तय किया कि जो शिक्षा नीति बने वह ग्रास रूट लेबल से हो जिसमें ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और वहाँ के सदस्य, शिक्षक, शिक्षा अधिकारी सभी की सहमति हो एवं उनके सुझावों पर चिंतन एवं मनन हो सके। समग्र शिक्षा से ही देश का समग्र विकास सम्भव है। हमारी शिक्षा नीति भविष्य का मार्गदर्शन करने नये ज्ञान का सर्जन करने वाली हो।

हमारी शिक्षा ज्ञान देने वाली, सृजनात्मक, रचनात्मकता देने वाली होनी चाहिए। वहीं हमारी शिक्षा नवाचार को प्रोत्साहित करे। शिक्षा का दृष्टिकोण भारतीय होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा होनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द का कथन दुहराते हुए बताया कि विद्यार्थी में अपने अन्तर्निहित गुणों को बाहर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा चरित्र एवं मानव निर्माण वाली होनी चाहिए। धन कमाना दूसरी प्राथमिकता होनी चाहिए। शिक्षा से कौशल विकास का होना नितान्त आवश्यक है जिससे विद्यार्थी अपना जीवन चला सके। वहीं शिक्षा व्यवहार पर आधारित होनी चाहिए, केवल सिद्धान्तों पर आधारित नहीं। शिक्षा में राज्यों की संस्कृति व सम्पदा का भी प्रतिनिधत्व होना चाहिए।

शिक्षा का प्रबन्धन नौकरशाहों के हाथ में न होकर शिक्षा से जुड़े हुए व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिए। तभी देश में शिक्षा का विकास और भला संभव है। स्वतंत्र एवं स्वायत्त निकाय बने। शिक्षा नेताओं और नौकरशाहों की दासी नहीं होनी चाहिए। वह राष्ट्र और व्यक्ति निर्माण की हो। शिक्षा नीति निर्धारण में शिक्षकों की सहमति होना बहुत जरूरी है। जो भी अच्छी शिक्षा नीति बने उसे धरातल पर उतारकर पूर्ण रूप से उसका क्रियान्वयन होना चाहिए। हमारी शिक्षा सर्वसुलभ व सर्व समावेशी हो जिससे देश और समाज का विकास संभव हो सके।

मुख्य वक्ता प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय (निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा) ने बताया कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम निर्धारण में 'बोर्ड ऑफ स्टडीज' की भूमिका होती है। जिसका सीधे सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। राष्ट्रीय विचार वाले शिक्षाविद् निश्चित रूप से पाठ्यक्रम में अपना मत प्रभावी ढंग से रख सकते हैं। भाषा के विषय पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि आज अंग्रेजी की तुलना में भारतीय भाषाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। भारत में राजभाषा के साथ-साथ प्रान्तीय भाषाओं का विकास होना चाहिए। आज कम्प्यूटर पर भाषा भी संस्कृत है और उसे अधिक प्रभावी ढंग से उपयोगी बनाना चाहिए। पारम्परिक विषयों का आधुनिक ढंग से प्रयोग कर उपयोगी बनाया जा सकता है। साहित्यकारों और इतिहासकारों पर लघु फिल्म बनाकर तैयार की जा सकती है। भारतीय ज्ञान जो सृजित है उसे तकनीकी के माध्यम से सामने लाने का (On-line) करने का प्रयास किया जाय जिससे सभी के लिए उपयोगी हो सके। प्रत्यक्ष ज्ञान एवं बोध का अवसर होना चाहिए। भारतीय शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीयकरण नितान्त आवश्यक है। जिससे भारतीयता की पहचान संपूर्ण विश्व में हो सके। जिन चीजों का आविष्कार किया जाए उनका पेटेन्ट कराना चाहिए।

संगोष्ठी के स्कूली शिक्षा सत्र में शैक्षिक मंथन के संपादक प्रो. संतोष पाण्डेय ने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था वामपंथी विचारों से युक्त है जिसे तुरन्त प्रभाव से परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय शिक्षा आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बन बनाने वाली होनी चाहिए। हमारी शिक्षा पद्धति का बल रोजगार पर होना चाहिए, नौकरी का नहीं। राष्ट्रभाव को प्रेरित करने वाली सांस्कृतिक परम्परा से युक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्वावलम्बन एवं राष्ट्र गौरव, कौशल विकास- केवल जुगाड़ संस्कृति का विकास नहीं, हुनर को आधुनिक तकनीकी के साथ समेकित करना है। डॉ. बनवारी लाल नाटिया ने बताया की के.जी. से पी.जी तक की शिक्षा राष्ट्रभाव से ओत प्रोत होनी चाहिए। ग्रामीण शिक्षा सेवा का केडर अलग से बने और शिक्षक पूरी सेवा ग्रामीण क्षेत्रों में ही दें। वहीं मोहन पुरोहित, बजरंग प्रसाद मजेजी, दिनेश चन्द्र, भरत शर्मा, महेन्द्र गर्ग, योगेश उपाध्याय, दयाराम महरिया, डॉ. योगेश गुप्ता, डॉ. रामनिवास, डॉ. समीर शर्मा, प्रो. राजीव सक्सेना आदि ने अपने विचार प्रस्तुत किये।

उच्च शिक्षा सत्र में मुख्य वक्ता डॉ. विनय शर्मा, उप निदेशक कॉलेज शिक्षा ने बताया कि व्यक्ति की जहाँ रुचि हो उस क्षेत्र में उसे कार्य करना चाहिए और उच्च शिक्षा में नैतिकता का होना बहुत जरूरी है। वहीं महिलाओं की सहभागिता बहुत आवश्यक है। गर्ल्स हॉस्टल की सुविधायें, स्कॉलरशिप की सुविधायें महिलाओं को दी जानी चाहिए। डॉ. रणजीत सिंह, डॉ. दिलीप गोयल, डॉ. राजेन्द्र शर्मा, डॉ. ओम प्रकाश पारीक आदि ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये।

अन्त में संगोष्ठी संयोजक डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा ने जानकारी दी की इस संगोष्ठी के सभी सत्रों में विभिन्न विषयों पर गहन विचार विमर्श किया गया और इस सभी बातों को समग्र रूप से शिक्षा नीति, 2015 में समावेषित करने के लिए एक समेकित प्रतिवेदन बनाकर सरकार को भिजवाया जाएगा। यह जानकारी मीडिया प्रभारी डॉ. योगेश कुमार गुप्ता ने दी। ❑

गतिविधि

हिमाचल प्रदेश में प्रतिभा सम्मान समारोह सम्पन्न

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ 'इकाई कुल्लू' द्वारा दिनांक 08 नवम्बर, 2015 (रविवार) को कुल्लू के लोअर ढालपुर में स्थित राजकीय केन्द्रीय प्राथमिक विद्यालय में 'प्रतिभा सम्मान' कार्यक्रम के प्रथम सत्र का शुभारंभ दीप प्रज्जवलन और माँ सरस्वती वन्दना से हुआ। हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ 'इकाई कुल्लू' के प्रधान श्री चतर सिंह ने समारोह के अध्यक्ष, मुख्य अतिथि और अन्य मौजूद अभिभावक जन, मेधावी छात्र और अन्य सभी का स्वागत कर अपने विचार रखे। इसके बाद समारोह के विषय प्रवर्तक सेवानिवृत्त शारीरिक शिक्षक श्री मोहर सिंह ठाकुर ने वर्तमान में शिक्षकों की बदलती भूमिका और शिक्षण कार्य में आधुनिक तकनीकी के समावेश पर अपने विचार रखते हुए कहा, 'आज शिक्षण कार्य में कंप्यूटर, मोबाइल फोन और इन्टरनेट के उपयोग द्वारा ही हम निजी शिक्षण संस्थानों को कड़ी प्रतिस्पर्धा दे सकते हैं और हम सभी को इनका स्कूलों में लगातार उपयोग करना है'।

समारोह के दूसरे सत्र में प्रदेश अध्यक्ष श्री पवन मिश्रा ने सभा को संबोधित किया। राष्ट्रहित में शिक्षा, शिक्षा के हित में शिक्षक और शिक्षक के हित में समाज इस ध्येय को लेकर शिक्षक महासंघ कार्य कर रहा है। उन्होंने मानव जीवन में शाश्वत जीवन मूल्यों की भूमिका पर प्रकाश डाला। इसके अलावा अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की प्रेरणा से हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ द्वारा चलाये गए पाँच वर्षीय 'शाश्वत जीवन मूल्य' अभियान के बारे में सभा को जानकारी प्रदान की। उन्होंने बताया, 'समाज के सभी वर्गों में संस्कार, नैतिक मूल्यों व सामाजिक समरसता में काफी कमी आई है। इसको दूर करने के लिए समाज के सभी वर्गों जिसमें छात्र-छात्राएँ, अभिभावक, अध्यापक एवं सेवा निवृत अध्यापकों का सहयोग अपेक्षित है। पूरे समाज में मानव चरित्र निर्माण अध्यापकों के माध्यम से ही सम्भव है। देश की भावी पीढ़ी में भारतीय संस्कारों व शास्वत जीवन मूल्यों का संचार हो यह आज की आवश्यकता है। अत: इस क्षेत्र में सभी अध्यापक बन्धु सहयोग करें।'

इसके बाद मुख्य अतिथि पूर्व उप निदेशक (उच्च शिक्षा) श्री राम लाल ने सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे उन छात्रों को सम्मानित किया जो पढ़ाई के साथ-साथ स्कूल की अन्य गतिविधियों में बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्राथमिक, उच्च एवं वरिष्ठ पाठशालाओं खिलाड़ी जिन्होंने विविध खेलों में राज्य स्तर पर अच्छा प्रदर्शन किया है उन्हें भी सम्मानित किया गया। सत्र के अन्त में मुख्य अतिथि श्री रामलाल ने अपने संबोधन में शिक्षक महासंघ द्वारा की गई इस नई पहल का स्वागत किया। उन्होंने कहा, 'हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ छात्रों को सम्मनित करके उनको प्रोत्साहित करने का कार्य कर रहा है। वर्तमान में लगभग 50 अध्यापक यूनियनें प्रदेश में विभिन्न माँगों को लेकर कार्य कर रही हैं परन्तु आज तक मैंने किसी भी अध्यापक यूनियन को इस तरह का काम करते नहीं सुना है। हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ, अखिल भारतीय शिक्षक महासंघ से सम्बद्ध होकर मानव चरित्र निर्माण व शिक्षा क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य कर रहा है। इसलिए वे बधाई के पात्र हैं।' इसके बाद जिला कुल्लू के संगठन मन्त्री मोहन लाल ने धन्यवाद किया। कार्यक्रम में मंच संचालन जिला कुल्लू के महामन्त्री कैलाश ठाकुर ने किया। इस कार्यक्रम में वीरेन्द्र चड्ढा (अतिरिक्त प्रान्त महामन्त्री), अशोक कुमार (प्रान्त सह संगठन मन्त्री), डॉ. संजीव कुमार (राज्य कार्यकारिणी सदस्य), नरेन्द्र कपिला (प्रधान, जिला सोलन), एवं जिला कुल्लू के पदाधिकारी और अन्य अध्यापक मौजूद रहे।

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ की जिला मंडी इकाई द्वारा 9 नवम्बर को जिला मंडी के सुंदरनगर में प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। श्री लेखराज राणा, उप निदेशक तकनीकी शिक्षा, जिला मंडी ने बतौर मुख्य अतिथि और श्री संजय सुरैली, अध्यक्ष, बल्ह विकास मंच ने विशिष्ट अतिथि शिरकित की। समारोह की अध्यक्षता पवन मिश्रा ने की। प्रथम सत्र का शुभारम्भ दीप प्रज्जवलन और माँ सरस्वती वन्दना से की गई। हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ 'इकाई मंडी' के प्रधान दर्शन लाल ने समारोह के अध्यक्ष, मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि और अन्य मौजूद अभिभावक जन, मेधावी छात्र और अन्य सभी का स्वागत किया।

समारोह के दूसरे सत्र में अध्यक्ष श्री पवन मिश्रा ने सभा को संबोधित किया और कहा कि शिक्षा में संस्कार होने पर ही शिक्षा सार्थक हो सकेगी और संस्कार घर व स्कूल से ही डाले जा सकते हैं। इसके बाद मुख्य अतिथि श्री लेखराज राणा ने स्कूलों में पढ़ रहे उन छात्रों को सम्मानित किया जो पढ़ाई के साथ-साथ स्कूल की अन्य गतिविधियों में बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने अपने उदबोधन में कहा कि शिक्षक महासंघ बच्चों को सम्मानित कर उनकी प्रतिभाओं को निखारने का काम कर रहा है। इसके सकारात्मक परिणाम भविष्य में नजर आयेंगे। अंत में भगत चन्देल ने सभा में मौजूद सभी का धन्यवाद किया।

इसी क्रम में 22 नवम्बर को जिला बिलासपुर का प्रतिभा सम्मान समारोह घुमारवीं के सरस्वती विद्या मंदिर में आयोजित किया गया। जिसमें पवन मिश्रा मुख्य अतिथि मौजूद रहे। इसमें हेमराज, पवन शर्मा, ललित, वीरेन्द्र चड्ढा, अशोक कुमार, नरेन्द्र कपिला, डॉ. संजीव कुमार, रविन्द्र व जिला बिलासपुर के अन्य पदाधिकारियों ने भाग लिया।

Committed Teachers Need of the Hour- Prof. Pramod Gai

Two days state level workshop on "Challenges of Higher Education : The Role of Teacher" organized by Karnataka Rajya Mahavidyalya Shaikshika Sangha (KRMSS).

An ideal teacher with a combination of research and teaching abilities is the need of the hour said Dr. Pramod Gai, the vice-chancellor of Karnataka Unviersity. He inaugurated and delivered keynote address in the two days state level workshop on Challenges of Higher Education : The Role of Teacher organized by Karnataka Rajya Mahavidyalya Shaikshika Sangha (KRMSS) in association with Dayanand Sagar University, Bengaluru. Prof Gai told that higher education is at cross-roads. We need quality students and quality institutions. There is a massive mismatch between demand and supply. There is a need for encouraging higher education among the youth. And it is equally important to encourage youth to take up teaching with commitment. He advised for teachers to undertake quality research of international standards.

Prof. S C Sharma the provost of Dayanand Sagar University spoke on the need for native education based on the advanced knowledge of the country. He also emphasized the necessity of using Sanskrit for better understanding. He also spoke on the issue of autonomy and constraints surrounding various sciences developed in the India in the ancient times should be studied properly.

Dr. Raghu Akmanchi, the president of KRMSS, spoke introductory words and explained why KRMSS is sometimes different from other teaching organizations. KRMSS is not an organization but a movement to bring about real change in higher education. Mr. Shivanand Shindhankera of Madhyamika Shikshaka Sangha introduced ABRSM and its ojectives. Prof Prasanna Pandhari, the co-convener welcomed and introduced the guests. Dr G K Badiger, the convener of the workshop anchored the programme and Dr Rajanna, secretary, KRMSS proposed vote of thanks. Sri Mahendra Kapoor, the National Organizing Secretary, ABRSM, Shri Krishna Bhat, Shri Shashil Namoshi, Sri Srinivas Nadiger, Prof G B Nandan, Dr. Satish Jigjinni, Sri Shantanna Kadival, Syndicate member, Karnataka University, Prof. Pragnesh Shah, Secretary, ABRSM higher wing, Shri Hinchgeri, were present. More than 110 delegates were present in the workhop.

As a part of the program special talks of eminent academicians were organized. The second day morning session was dedicated to various issues related to Higher education. Dr. Ashok Shettar, the Vice Chancellor of KLE's Technological University Hubli, Dr. M.I. Savadatti and Dr. B.R. Anantan, the former vice-chancellors delivered special talks.

Dr. Ashok Shettar spoke on challenge of change. He stressed the need of balanced higher education where knowledge and skills are synthesized. He said there is a huge gap between the knowledge and skills which hampered the growth of students. There is need for quality education to compete globally.

Dr. M.I Savadatti delivered talk of Attitudes of Teachers. He said there is a falling standard in imparting education because of our preoccupation with monetary benefits. Teachers are to be encouraged to love the duty. There is need for change in the attitudes of teachers for a qualitative change.

Dr. B. R. Anantan also spoke about the need of employability and skill training. Dr. Raghu Akmanchi, Sri Sandeep and many others were present.

Dr. Subbanna Bhat spoke on the contribution of India to Science and Technology in the ancient times.

Sri Mangesh Bhende was chief guest of the valedictory function. He expressed deep concerns about the falling of values in the country. He emphasized need for change. It is the responsibility of the teachers to preserve the culture of the land. Dr. Raghu Akmanchi, Dr. Rajanna, and Mahendra Kapoor were present. Shivanand Shindankera and Sandeep Budihal of Mandyamik Shikshaka Snagha were also present. Dr. S.C. Sharma, Dr. Hinchgir, Dr. Nadan and Dr. Nagaraj, Ravikumar and others were present.

States Meet to 'Moderate' Results

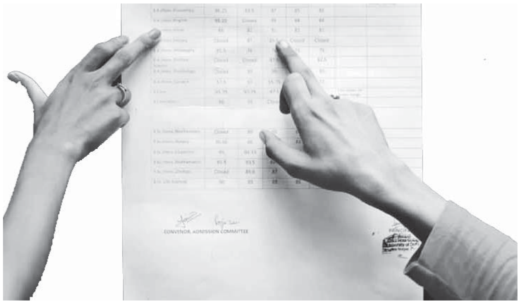

With admission cut-offs in universities scaling new peaks every year, the practice of "moderation" of marks in Class XII exams could become a hot-button issue at the national-level meeting of school boards called by the HRD Ministry.

Moderation of marks a policy adopted by all school education boards is often seen as the reason behind the steady inflation of Class XII results. Reflecting the tendency to award progressively higher academic grades, the number of students scoring 95 per cent and above in the Class XII examination conducted by CBSE rose 23 times in six years from 384 in 2008 to 8,971 in 2014. This trend has forced the country's best universities to set the eligibility bar drastically high for applicants. This year, two colleges affiliated to Delhi University set the admission threshold at 100 per cent for admission to their BSc (Computer Science) course.

"The central government has invited 42 national and state-level school education boards on October 28 to 'revisit the continuation of the moderation practice', among other things," said the chairman of a state board, who did not wish to be identified. HRD ministry spokesperson Ghanshyam Goel did not respond to requests seeking comment. But the Centre, sources said, is keen to discuss this practice as high cut-off marks at universities is forcing many students to move abroad. Every year, about 2 crore students appear in Class X and about 1.5 crore in Class XII public exams conducted by the 42 education boards. Moderation of marks is a common practice adopted to "bring uniformity in the evaluation process". In other words, marks scored by students are tweaked to align the marking standards of different examiners. This practice, however, is just one among many other examination reforms that will be discussed at the meeting. The agenda note, also proposes discussions on: *The existing system of setting question papers, marking pattern, evaluation, rechecking, re-totalling and revaluation.* Laying down guidelines to prevent cheating in examination. * The need for JEE (Advanced) examination, as merit list of IITs can be prepared on the basis of JEE (Main). * Linking the syllabus and examination pattern for Classes 10 and 12 and the entrance examinations for admission to medical and engineering colleges. * A relook at the teaching-learning process in classrooms. * The implementation of continuous comprehensive evaluation. The government also wants all the state boards to hand over their respective Class XII results to the CBSE by June 17 so that the declaration of IIT and NIT entrance results is not delayed.

"Current Scenario on Higher Education in India"

Organized by Guru Gobind Singh I P University Shaikshik Sangh

A seminar on the topic of "Current Scenario on Higher Education in India was organized by Guru Gobind Singh I P University Shaikshik Sangh which is affiliated to ABRSM on 24th November, 2015 in Rukmini Devi Institute of Advanced Studies, Madhuban Chowk, Rohini. The RDIAS is an affiliated institute of GGSIP University, Delhi. The Chief speakers were Prof. Chandrashekhar, IIT Delhi and Prof. Aswini Mohapatra, Department of International Studies, JNU. Both the speakers deliberated at length about current scenario of higher education in the country. Prof. Chandrashekhar more specifically utilized this opportunity to point out the difficulties in effective implementation of technical education across India. Prof. Mohapatra stressed upon the ideological framework of the higher education and emphasized upon the nationalistic agenda to be incorporated with the curriculum. About 150 teachers from GGSIP University and various colleges of this university participated in this event.

This event was also utilized for announcing the office bearers of the newly constituted unit of teachers group of GGSIP University known as Guru Gobind Singh I P University Shaikshik Sangh. This shaikshik sangh is affiliated to ABRSM and is its integral part. These office bearers are

1. Prof. N C Gupta (President)
2. Dr. Yogesh Tyagi (General Secretary)
3. Dr. Savita Mittal (Treasurer)
4. Dr. Chetna Tiwari (Joint Secretary)

An announcement was made to this effect to declare the names of these office bearers on this occasion.

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

कबीर सर्किल के पास, एम.बी.एस. मार्ग, कोटा

माननीय प्रधानमंत्री महोदय भारत सरकार के आह्वान पर

स्वच्छता अभियान

महामहिम राज्यपाल, राजस्थान प्रदेश एवं कुलाधिपति महोदय के निर्देशानुसार विश्वविद्यालय में शैक्षणिक सुधार हेतु प-8 कार्यक्रम :

- **प्रवेश** : प्रवेश कार्य निर्धारित अवधि में पूर्ण।
- **पढ़ाई** : नियमित कक्षाएँ व छात्रों की उपस्थिति।
- **परिसर/परिवेश** : छात्राओं के साथ छेड़खानी, छात्रों के साथ गुटबाजी, रैगिंग एवं गुण्डागर्दी पर प्रभावी रोक।
- **परीक्षा** : नकलविहीन परीक्षाएँ।
- **परीक्षण** : परीक्षण– मूल्यांकन में गुणवत्ता।
- **परिणाम** : परिणाम घोषित करने में गोपनीयता
- **पूर्णमूल्यांकन** : पूर्नमूल्यांकन गंभीरता एवं पाक साफ तरीके से हो।
- **पदक एवं पदवी** : उपाधि वितरण एवं दीक्षान्त समारोह नियमित हो।

विश्वविद्यालय उक्त के लिए कृत संकल्पित है और प्रगति की ओर अग्रसर है।

कोटा विश्वविद्यालय की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ